परियोजना का नामः–

थारू जनजाति की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत एवं विविध सांस्कृतिक परम्पराओं के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु अध्ययन

प्रायोजकः संगीत एवं नाट्य एकादमी (नई दिल्ली)
भारत सरकार

आयोजकः "सारस" शिवालिक हयूमन एग्रीकल्चर रिसर्च एंड एक्शन इनवायरनमैंट सोसाईटी,खटीमा (उत्तराखंड)

परियोजना संचालनः

डा0 योगेश चन्द्र
डा0 गीता जोशी

आभारः

श्री गोपाल सिंह राणा (पूर्व राणा थारू परिषद अध्यक्ष)
श्री तेजसिहं भंडारी, (सचिव,उत्तरांचल विकास संस्थान)
नरेश राणा,श्री बंटीसिहं,बहादुर सिंह राणा,शिवकुमार

विषय प्रवेश

किसी भी समाज की सांस्कृतिक स्थिति व विरासत उस समाज के ऐतिहासिक पृष्टभूमि पर निर्भर होती है, क्योंकि उस समाज का इतिहास उस समाज में समय–समय में आये सुखद एवं दुःखद क्षणों के वृतान्त का दिग्दर्शन कराता है ,और समाज को अपने अतीत् की भूलों से सीख लेने व भविष्य में सुधार हेतु प्रेरणा के स्त्रोत के रुप में कार्य करता है। इस कारण किसी भी समाज की सांस्कृतिक स्थिति एवं उस समाज की विरासत को समझने से पूर्व उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की जानकारी करना आवश्यक है कि उस समाज का प्राचीन इतिहास क्या है, किन–किन सम एवं विसम् परिस्थितयों का सामना उस समाज को अपने अतीत् में करना पड़ा। उस स्थिति का उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में क्या परिवर्तन आया , साथ ही अन्य समाज के सम्पर्क में आने पर उस समाज में क्या परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है, क्या वह समाज अपने पूर्व की विरासत को अपनी भावी पीढ़ी को हस्तांन्तरित कर पाने में सक्षम रहा अथवा नहीं!

थारु जनजाति की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत एवं विविध सांस्कृतिक परम्पराओं के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु परियोजना

प्राक्कथन (लेखक की कलम से)

उत्तराखंड धार्मिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं के संदर्भ में एवं विविधता वाला प्रान्त है। देवभूमि के गौरव से गौरवान्वित भारतवर्ष का यह प्रान्त मध्य हिमालयी भू–भाग अनादिकाल से ही यहां के मूल निवासी यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, कोल,किरात आदि के अतिरिक्त समय–समय पर अन्यान्य प्रजातियों, जातियों, धर्मों, सम्प्रदायों एवं संस्कृतियों से सम्बद्व मानव समूह को यहां की प्राकृतिक सौन्दर्य,समृद्व वनस्पतियों, जैव विविधता, स्वच्छ एवं शान्त वातावरण अपनी ओर आकृष्ट करता रहा है।

आज से अरबों वर्ष पूर्व जब मानव का प्रादुर्भाव इस विश्वधरा धाम पर हुआ, उस समय वह आदम ही था,जो कि अभी मानव प्राणियों का पूर्वज था। प्राचीनकालीन मानव आज की तरह विकसित अवस्था में नहीं था। विकास की प्रकिया धीरे–धीरे चली। इस प्रकार शनैः शनैः विकसित होता हुआ प्राचीन आदम समाज सभ्य होता ही गया। ऐतिहासिक दृष्टि से मानव विकास के कई सोपान हैं जैसे पूरा पाषाण काल – इस काल में मानव कबीलों में रहता था तथा खानाबदोशी जीवन व्ययतीत करता था। वृक्षों के नीचे, गुफाओं तथा खोहों में रहता था। प्रस्तरखण्डों,लकड़ी तथा अस्थियों के हथियारों की मदद से जंगली हिंसक जानवरों से अपनी सुरक्षा तथा जीवन निर्वाह करता था ।

नवपाषाण काल अथवा उत्तर पाषाण काल में मानव ने सभ्य एवं विकास के पथ पर धीरे–धीरे प्रगति कर प्राकृतिक तथ्यों पर नियन्त्रण का प्रयास किया ।

अब वह एक निश्चित स्थान पर रहकर कृषक एवं पशुपालक के रुप में जीवन व्ययतीत करने लगा। धीरे–धीरे कुटुम्ब तथा ग्रामों का विकास हुआ। लेकिन जो कबीले इस विकास की प्रक्रिया से छूट गये, वे वनों में ही अपना जीवन व्ययतीत करने लगे। यही लोग जनजाति कहलाये। वर्ष 1971 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल जनसंख्या का 7% भाग जनजातियों का है। लेकिन जहां तक थारु जनजाति का प्रश्न है, इस जनजाति के लोग अपने को राजस्थान कं राणा प्रताप के वंशज बताते हैं। जो मध्य काल में मुगलों के अत्याचार से पलायन कर भारत के पूर्व के क्षेत्रों से होते हुए बिहार और फिर उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र जो कि बहुत ही घने वनों से आच्छादित था, में आकर बस गये।इन जंगली क्षेत्रों में निवास करने के कारण इनका बौद्विक विकास वाधित रहा जिसके कारण अन्य लोगों की अपेक्षा यह थारु जनजाति पिछड़ती रही।

उत्तराखंड का संक्षिप्त परिचय

उत्तर प्रदेश की उत्तरी सीमा में हिमालय की गोद में स्थित उत्तराखंड प्राचीन काल से ही भारतवर्ष का देव तुल्य परम–पावन भू–भाग रहा है। उत्तराखंड भूमि यक्ष, किन्नर, गन्धर्व तथा देवी देवताओं की पावन भूमि रही है। न केवल भारत वरन् अन्यान्य देशों से भी ऋषि मुनि आध्यात्मिक लाभ के लिए यहां आते हैं । यह वही उत्तराखंड है, जिसकी उंची चोटी को देवाधिदेव भगवान शंकर ने अपने निवास हेतु चुना था। पांडवों ने भी जीवन के अन्तिम काल में 'इन्द्रप्रस्थ', त्याग राजसत्ता अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को सौंप कर हिमालय में शरण ली और हिमशिखरों पर चलते–चलते इहलीला समाप्त की।

इतिहास पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होता है कि समय–समय पर दूरदराज़ के इलाकों से लोग यहां आकर बसे और ऐसे आत्मसात् हुए कि आज उनकी पृथक पहचान करना कठिन है। इसीलिए उत्तराखंड के तराई भू–भाग को 'कौमी गुलदस्ता' भी कहा जाता है। प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न इस क्षेत्र की महिमा ही अनोखी है। इस भूमि पर जप तप करने ऋषि, महात्मा ,सन्यासी देव सभी ने शान्त एवं प्रिय मानकर चयन किया था। अनेक विद्वान ऋषि–मुनियों, योद्वाओं की इस धरती का इतिहास बहुत ही प्राचीन है। अनादिकाल से ही यह धरती शरणस्थली के रुप में भी जानी जाती है। जैसाकि विदेशी आकान्ता से हार कर राजपूतों ने यहीं शरण ली, और मध्यकाल में भी मुगलों से पराजित होकर राणा पुत्र–बधुएं एवं रानियों ने अपने सहचरों के साथ उत्तराखंड तराई वनीय क्षेत्रों को अपना निवास स्थान चुना था। सन् 1947 में भारत के विभाजन के बाद भी पाकिस्तान के पंजाब, सिंध प्रान्त के सिक्खों को इसी तराई में बसाया गया । सन् 1971 में पाक के विभाजन के बाद बंगाली समुदाय को भी उत्तराखंड के तराई क्षेत्र में शरण दी गयी। इस तरह यह तराई का क्षेत्र एक शरणार्थी स्थल के रुप में भी जाना जाता है। यही उत्तराखंड का क्षेत्र है जिस पर विजय पाने के उद्देश्य से एक

पागल बादशाह मुहम्मद तुगलक चल पड़ा था, लेकिन अन्त में इस पवित्र धरती पर जिसके रक्षक देवाधिदेव शिव हैं, प्रकृति ने मुहम्मद तुगलक को घुटने टेकने पर विवश कर दिया और उसे खाली हाथ लौटना पड़ा था। यह विजय उसकी अपूर्ण रह गयी।

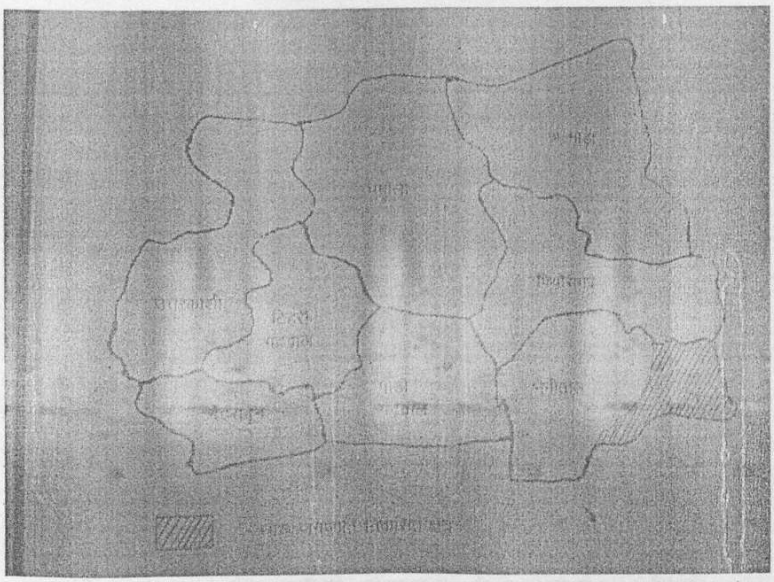

उत्तराखंड सौन्दर्य की दृष्टि से भी अद्वितीय है जो दो मण्डलों में विभक्त है।

1. गढ़वाल मंडल – जिसमें सात जिले हैं जो अपनी प्राकृतिक सुन्दरता एवं धार्मिक आस्था के लिए प्रसिद्व है।
2. कुमाऊं मंडल– कुमाऊं की धरती बड़ी रसीली है। हरे– भरे बांज, बुरांज के वनों में नाना प्रकार के पशु–पक्षी स्वच्छन्द विचरण करते रहते हैं। नदियों का कलरव स्वर जहां सैलानियों को कर्णप्रिय लगता है, पक्षियों का कलरव उन्हें मादकता प्रदान करता है। सीढ़ीनुमा खेतों की सुन्दरता तो यहां देखने योग्य होती है। दूर–दूर तक घाटियों में पकी फसलों का सौन्दर्य अद्भुत होता है। लगता है, प्रकृति ने विभिन्न प्रकार के रंगों की साड़ियों को ओढ़ लिया हो।

यहां नाना प्रकार के वृक्ष अनेक प्रकार के फल–फूलों से लदे रहते हैं। पर्वतों की चोटियों से झरने छलकते हुए झरते हैं। मखमली धरती के इसी आंचल में सुन्दर

तालों की शोभा पर्यटकों को सुख प्रदान करने के लिए तैयार रहती हैं। फलों की डालियां झुक–झुक कर आने वालों को न्यौता देती हुई सी लगती हैं, मानों कह रही हों–'आप इधर आयें'। हमारा प्रणाम स्वीकार करते हुए हमारा रसास्वादन करें', इस प्रकार मधुर स्मृतियों को संजाने वाला है यह कुमॉऊ अंचल!

कुमाऊं मण्डल के वर्तमान अभिलेखों के अनुसार जनपदों का क्षेत्र विस्तार निम्न तालिका में स्पष्ट है:–

कुमाऊं मण्डल का भौगोलिक क्षेत्रफल विस्तार वर्ग किलोमीटर में :–

व्र0सं0	जनपद का नाम	क्षेत्रफल(वर्ग किलोमीटर में)
1.	उधमसिहं नगर	2908
2.	चम्पावत	1781
3.	पिथौरागढ़	7110
4.	अल्मोड़ा	3082
5.	नैनीताल	3860

कुमांऊ मण्डल का कुल क्षेत्रफ़ल 21035.00 वर्ग किलोमीटर है। कुमांऊ मंण्डल का क्षेत्रफल मुख्यतः पर्वतीय भू–भाग तथा मैदानी भू–भाग तथा मैदानी भू–भागों के कारण यहां मौसम का भिन्न–भिन्न प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

पर्वतीय भू–भाग अत्यंत ठंडे जबकि मैदानी भाग अपेक्षाकृत गर्म रहता है, यही गर्म भाग तराई–भाबर कहलाता है।

भाबर क्षेत्र– भाबर क्षेत्र समुन्द्र तल से 1500 मीटर हिमालय पर्वत श्रृंखला की तलहटी में पश्चिम में फीका नदी से पूर्व शारदा नदी तक लगभग 15 कि0मी0 लम्बी तथा 18 किलोमीटर चौड़ाई के क्षेत्र में, जो रामनगर, हल्दवानी, कालाढुंगी,कोटाबाग,काठगोदाम, चोरगलिया तथा टनकपुर तक फैला है।

तराई क्षेत्रः– कुमांऊ मंण्डल के जनपद उधमसिहं नगर में तराई क्षेत्र का विस्तार भाबर क्षेत्र के दक्षिण में लगभग 18 कि0मी0 चौड़ा तथा 50 कि0मी0 लम्बे क्षेत्र में फैला है। यह क्षेत्र समुन्द्र तल से 700 मी0 से 795 मी0 की ऊंचाई पर स्थित है। इस क्षेत्र में खटीमा, सितारगंज, बाजपुर, गदरपुर, काशीपुर विकास खण्डों में साथ–साथ रामनगर तथा हल्दवानी विकास खंडों का अधिकांश भू–भाग सम्मलित है।

जैसा कि चीनी यात्री हवेगसांग ने काशीपुर के संदर्भ में अपनी यात्रा वृतान्त में जो कुछ लिखा है उसका सारांश कनिंधम साहब ने इस प्रकार लिखा है:–'मादीपुर से

चलकर वह 66 मील की दूरी पर गोवसांण नामक स्थान पर पहुचा। यह राजधानी 25 मील की गोलाई में फैली थी'।

जनपद उधमसिहं नगरः– 29 सितम्बर 1995 को उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा नैनीताल के मैदानी भाग जिसमें भाबर का कुछ क्षेत्र तथा तराई को मिलाकर उधमसिहं नगर की स्थापना की गअी। । यह तराई भू–भाग का निर्माण जनपद की दक्षिण की ओर बहने वाली तीव्रगामी नदियों द्वारा तलहटी पर निक्षेपण किये गये पत्थर एवं मिटटी की बारीक एवं सूक्ष्म कणों से हुआ है।

आज से लगभग 40 वर्ष पूर्व तक यह जनपद तराई का दलदलीय व धने जंगलों से आच्छादित क्षेत्र था।

उधमसिहं नगर का थारु जनजाति निवासित क्षेत्र का मानचित्र.....

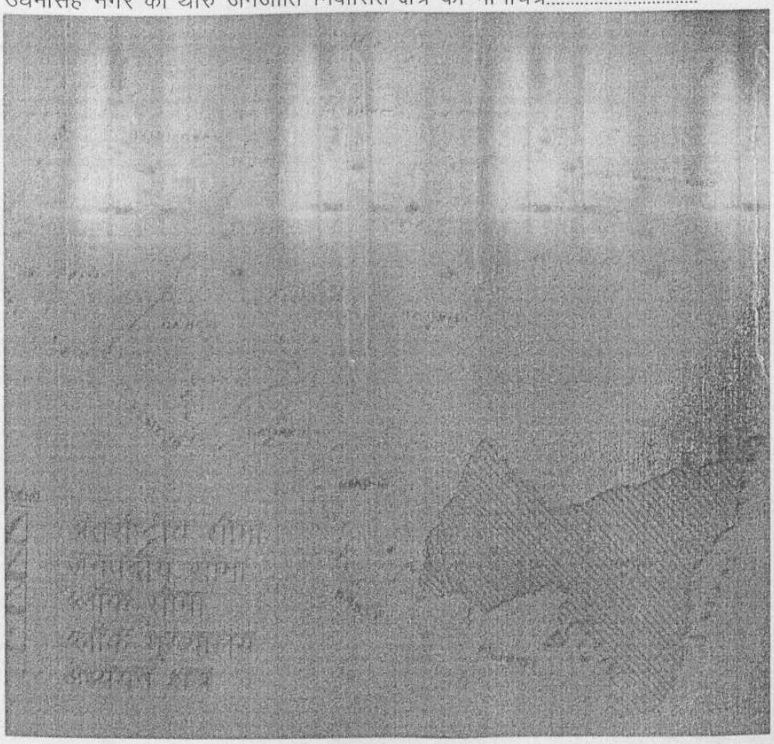

उधमसिहं नगर जनपद टनकपुर से 200 कि0मी0 लम्बा और लालकुआं से किच्छा तक 14 कि0मी0 चौड़ा बसा है।यहां की प्रमुख नदियों तथा जलाशयों में ढेला,कोसी,दाबका और भाखरा,बैगुलबांध, शारदा सागर बांध आदि प्रमुख हैं।

इस जनपद के तराई–भाबर में थारु एवं बुकसा जनजातियों का निवास स्थल है, जो कि इस तराई क्षेत्र के मूल निवासी हैं। थारु जनजाति का निवास क्षेत्र खटीमा तथा सितारगंज विकास खंड के 28 अंश–43 अंश से 29 अंश – 26 अंश उतरी अक्षांश तथा 75–53 से 60 अंश पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है जो कि खटीमा तथा सितारगंज में कुल 120 व 117 ग्रम हैं, और जिनमें कमशः 74 व 64 ग्राम थारु जनजाति के हैं ।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि– उत्पत्तिः–

कोसी नदी के पूर्व में कुमाऊं की पहाड़ियों की तलहटी से लगे भू–भाग में एक जनजाति जो थारु नाम से जानी जाती है के दर्शन हमें होते हैं । यह दल–दल अर्थात तराई क्षेत्र के निवासी हैं, कृषि इनका मुख्य व्यवसाय है । मलेरिया का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । जातिगत नाम की दृष्टि से इन्हें थडुवा तथा उनके निवास स्थान को थडुवाट नाम से जाना जाता है। उधमसिंह नगर के अधिकांश भाग मुख्य रुप से सितारगंज तथा खटीमा तहसील क्षेत्र को थरुवाट नाम से ही जाना जाता है।

थारु शब्द की उत्पत्ति के संदर्भ में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। कुछ लोग इन्हें विरात जाति का वंशज मानते हैं । परन्तु इस संदर्भ मे सभी विद्वान एक मत नहीं हैं।

नेस्फील्ड ने थारु का आशय जंगल के मनुष्यों से लगाया है। कुक के अनुसार 'थारु' शब्द का अर्थ दारु अर्थात शराब से होता है इनकी शराब पीने की आदत को देखकर एक राजा ने इनको थारु कहा था' ।
कुछ अन्य लोग थारु का सम्बंध राजस्थान के थार मरुस्थल से लगाते हैं। लोक कथाओं के अनुसार थारु जनजाति के लोग राजस्थान की रियासतों में सेवक या सैनिक थे। मुस्लिम शासकों द्वारा पराजित हिन्दू राजा मार दिए जाने पर ये लोग अपनी प्राण एवं धर्म तथा संस्कृति की रक्षा के लिए जंगलों में भाग गये, और छिपते–छिपाते उत्तर प्रदेश के बिहड़ वनों में आकर बस गये थे। अवध गजेटियर के अनुसार 'थारु शब्द की उत्पत्ति 'तराई या नम से हुई है।' जिसके अनुसार ये दलदलीय भूमि के रहने वाले लोग हैं। जैसा कि थारु जनजाति के लोगों का दावा है कि वे राजस्थान के राजपूतों के वंशज हैं। तराई अंचल में प्रचलित धारणा के

अनुसार तेरहवीं–चौंदहवीं सदी में राजस्थान पर आक्रमणकारियों ने धावे बोले। आक्रान्ताओं के सामने राजपूतों को हार का सामना करना पड़ा, रानियों ने आततायियों के चंगुल में फंस जाने के बजाय अपने विश्वस्त सेवकों के साथ वहां से भाग जाने में ही अपना भला देखा। तराई के सघन वनों में शरण ली। अपने अनुचरों से पैदा उनकी संताने ही ये आदिवासी हैं। इतिहासविद्व एच0आर0 नेविल का कथन है कि उनके चर्मकार सेवकों की सन्तान थारु है तो लुहारों की संतान बुक्सा ।

थारु राणा परिषद के सदस्य जोगीदास राणा तथा थारु समाज के बुजुर्गों का कथन है कि दिल्ली के सुल्तान अल्लाउद्दीन खिलजी ने जब मेवाड़ की महारानी पद्यमिनी को प्राप्त करने के लिए सन् 1300 ई0 में मेवाड़ राज्य पर आक्रमण किया तो युद्व में राजपूत पराजित हुए, अपनी इज्जत–आबरु,धर्म,संस्कृति को बचाने के लिए राजपूत स्त्रियों,बच्चों तथा पुरुषों ने मेवाड़ से भाग कर हिमालय के तराई क्षेत्र में शरण ली थी। उनका कथन है कि सर्वप्रथम 12 राणा इस तराई क्षेत्र में आये, जिनके नाम पर बारह राणा गांव बसा। आज भी यह स्थान इसी नाम से जाना जाता है। उनमें से पांच राणा भाईयों के नाम तथा वे कहां बसे यह इस प्रकार बताते हैं:–

1. विजय सिंह– विजय सिंह ने बारह राणा गांव बसाया उसके वंशज आज भी वहां रहते हैं।
2. वीरसिहं– वीरसिहं ने वेसिया गांव बसाया, यह आज बेसिया पिछली नाम से आज भी जाना जाता हैं।
3. हरिसिंह– हरि सिंह ने गुरुखेड़ा गांव बसाया।
4. तरवर सिंह– तरवर सिंह शारदा को पार कर नेपाल की तराई में जा बसा।
5. राणा नरसिहं– राणा नरसिहं ने खटीमा में शरण ली। वंश वृद्वि होते–होते पूरे तराई क्षेत्र में फैल गये।

एक विद्वान के अनुसार मुस्लिम शासकों से राजपूतों के पराजय के पश्चात व वीरगति को प्राप्त हो जाने के बाद महाराणी पद्यमनी ने जौहर कर अपने प्राण त्यागे। जीते जी उन आतताई दरिन्दों के हाथ न लगी। चित्तौड़ के इस युद्व में मेवाड़ का जीवन अस्त–व्यस्त हो गया। लहू व लाशों से जमीन लथ–पथ हो गयी, और सतियों के भस्म से चित्तौड़गढ़ का किला डरावना बन गया था। जौहर की असहनीय पीड़ा से घबराकर और अपने धर्म, संस्कृति व इज्जत–आबरु बचाने के लिए जो बच्चे और राजपुतानियां, राजपूत रानियां अपने सेवकों व दासों के साथ जान बचाकर भाग आयी व सदैव के लिए अपने माता–पिता व सगे बंधु –बांधवों के लिए आंखें निहारती रह गयी। समय की परिस्थितियों के कारण सम्बंन्ध भी टूट गया। इन्हीं जंगलों के बीच विपदाओं के कारण सभी मार्यादाओं आन्तरिक वृत्तियों की भी सन्तुष्टि हेतु राजपूत स्त्रियों ने इन्हीं सेवकों व दासों से यौन सम्बंध स्थापित कर लिया– इस प्रकार से उत्पन्न सन्तान थारु कहलाई।

नयी परिस्थितियों के अनुसार नये समाज को जन्म में जिसमें सभी जात–पात उंच–नीच के भेदभाव छोड़ कर एकता स्थापित हो गयी और नवीन परिस्थितियों के अनुसार नये रीति–रिवाज बन गये। थारु समाज में स्त्रियों का उंचा स्थान रहा और इन जंगलों के बीच बहुत सी राज परिवार की स्त्रियां भी थीं, इसलिए थारु समाज में इनको सर्वोच्च स्थान दिया गया।
नेसफिल्ड ने इस किंवन्ति को कल्पना पर आधारित बताया है, उसके अनुसार अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के उद्देश्य से थारुओं द्वारा यह किवदन्ति रची गयी है।
विद्वान कुक विलियम थारु शब्द के विवेचन के आधार पर थारु कबीले के पूर्व इतिहास के बारे में अटकलें लगाते हैं,। उनका कथन है कि 'थारु शब्द का अर्थ 'पियक्कड़' होता है। उनकी जाति को यह नाम मैदानी इलाके के एक क्षेत्रीय राजा ने दिया , जो थारुओं की शराब की क्षमता से भौचक्का रह गया था।
इसके विपरीत नेसफिल्ड का विचार है कि 'थार' शब्द का अर्थ स्थानीय बोली में वन होता है। तराई जंगलों के निवासी होने के कारण उनको थारु नाम दिया गया ।

नृशंसविद् उनके चेहरे,मोहरे को मंगोलों के समान ठहराते हैं तथा मानते हैं कि उनके पूर्वज मंगोल रहे होगें।
इस दिशा में पहला प्रयास लखनऊ विश्वविद्यालय के मानव विज्ञानी डा0 डी0एन0 मजूमदार ने सन् 1941 की संयुक्त प्रान्त अब उत्तर प्रदेश की जनगणना के दौरान किया था । 'थारुओं की शारीरिक बनावट तथा रक्त समूह के अध्ययन के आधार पर उनका मत था कि थारु मंगोल जाति के वंशज हैं।
थारुओं की उत्पत्ति के सन्दर्भ में उपरोक्त सिद्वान्तों में कोई भी प्रमाणिक्ता नहीं है और जो कुछ कहा भी जाता है सभी कल्पनाओं के आधार पर ही है। इतना अवश्य है सत्य है कि थारु जनजाति के लोगों का सम्बंध राजस्थान के राजपूतों से रहा होगा। अपने धर्म और संस्कृति तथा इज्जत– आबरु को बचाने के लिए हर प्रकार के दुःख सहे और सैकड़ों वर्षों तक वेचारे इन धने जंगलों के बीच, जहां मलेरिया का प्रकोप था,शेर,भालू ,जंगली हाथी,चीते थे, अनेक कष्टों को सहन करते हुए जीवन बिताते रहे।

ऐतिहासिक सत्य जो भी हो थारु जनजाति के पहनावे, परम्पराओं व अन्य तथ्यों पर गौर करें तो ऐसा लगता है कि कुछ राजपूत स्त्रियों एवं उनकी सहकर्मियों ने जौहर की पीड़ा व असहनीय कष्टों को सहन न कर सकने के कारण अपने सैनिकों व नीची जातियों के कर्मचारियों के साथ अपने मूल स्थान से मलच्छ आत्ताइयों से अपनी इज्जत,आबरु तथा धर्म संस्कृति की हिफाजत के लिए अलग–अलग टुकड़ियों में एक शाखा पूर्व की ओर गयी जो बिहार राज्य के मोतीहारी के उत्तरी उसमें लगे क्षेत्रों में बस गयी जो वर्तमान मे उस क्षेत्र के भागों में बसे हैं। उनकी कुछ शाखायें राजस्थान से उत्तर भारत की ओर आयी जो स्थान इन्हें अच्छा व सुरक्षित लगा वहीं बस गयी। अतः उत्तर प्रदेश के लखीमपुर खीरी,गोंण्डा

'सारस' संस्था खटीमा के कलाकारों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम के फोटोग्राफ -

(1)

(2)

(3)

(4)

'सारस' संस्था खटीमा के थारू कलाकार (कार्यक्रम प्रस्तुत करते हुए-

(5)

(6)

नृत्य नाटिका (7)

होली नृत्य (8)

हन्ना नॉच

कलाकारों को पुरस्कार करते संस्थाध्यक्ष

थारू जनजाति के सांस्कृतिक कार्यक्रम - झींझीं, हन्ना, स्वांग का फोटो -

थारू जनजाति के सांस्कृतिक कार्यक्रम के फोटो :- होली, सामूहिक नृ

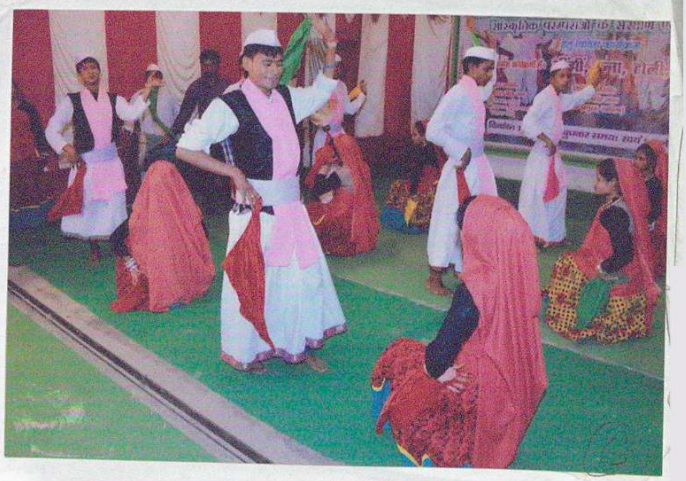

गोरखपुर,बस्ती तथा वहराइच के क्षेत्रों में बस गयी। कुछ लोग आगे बढ़ते हुये नैनीताल की तराई जो वर्तमान में उधमसिहं नगर का हिस्सा है– खटीमा,सितारगंज, नानकमता क्षेत्र में आकर बस गयी। इन्हीं में से कुछ लोग शारदा नदी पार कर नेपाल के तराई क्षेत्र में आकर बस गये। इस प्रकार से उत्तरप्रदेश वर्तमान उत्तराखंड के तराई क्षेत्र में आकर बस गये। इस प्रकार से उत्तर प्रदेश वर्तमान उत्तराखंड के तराई क्षेत्र के धने तथा नमीदार जंगलों में शरण ली थी। उन्होंने यह भलींभांति समझ लिया था कि इस विचित्र एवं निर्जन स्थान पर जीवन यापन तभी संभव है जबकि जाति तथा धर्म वर्ण–भेद छोड़ दिऐ जायें। एक रात्रिकालीन स्थिति अधिवेशन में उन्होंने सभी जातियों तथा उपजातियों को एक में मिला देने और पूर्वकालीन स्थिति पर पर्दा डालने का निश्चिय किया तब से थारु जनजाति जाति–विहीन है। उनमें उपजातियों का अस्तित्व पिछले दिनों का अवशेष माना जाता है। खटीमा एवं सितारगंज विकास खंड 1991 की जनगणना के अनुसार थारु जनजाति की जनसंख्या निम्नतः है:–

सन् 1991 की जनगणना के अनुसार दो तहसील कार्यालयों से संकलित –

तहसील का नाम	थारु पुरुषों की संख्या	थारु महिलाओं की संख्या	कुल थारु जनसंख्या
खटिमा	41285	39506	80791
सितारगंज	33838	25988	59826

थारु जनजाति के प्रवास काल के संदर्भ में सबसे प्रमाणित उल्लेख आइने – ए–अकबरी सन् 1567 इस्वी सें संबद्व है जिसके अन्तर्गत अकबर के शासन में तराई क्षेत्र में बुक्सार क्षेत्र वर्तमान रुद्रपुर से किलपुरी क्षेत्र का उल्लेख है, जिसे अकबर ने कुमाऊं के राजा रुद्रचन्द्र को पंजाब में सफल युद्व में अपनी वीरता प्रदर्शित करने के फलस्वरुप प्रदान किया। इसका तात्पर्य यह है कि इस जनजाति थारु व बुक्सा के लोग 16वीं सदी से पूर्व से ही तराई क्षेत्र में आकर बसे थे ।
अपनी संस्कृति को विकसित कर लेने के कारण इसने कालान्तर में एक जनजाति का रुप ग्रहण कर लिया। उक्त कथन् के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह जनजाति भाबर–तराई क्षेत्र में खिलजी के शासनकाल के समय बसी होगी। अनेक इतिहारकारों तथा मानवशात्रियों के विचारों से जिन में कुछ का समर्थन स्वयं थारु समाज के बुजुर्ग भी करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि एक अप्रवासी समूह के रुप में यह जनजाति अपने आरम्भिक चरण में पूर्णतः मातृसत्तात्मक थी, क्योंकि इनके अन्तर्गत उन राजपूत स्त्रियों की प्रधानता थी जो विभिन्न जातियों के अपने सेवकों के साथ भाग कर तराई क्षेत्रों के निर्जन जंगली तथा दूरस्थ प्रदेश में आकर बसी थीं । अपने प्रवास के काफी अरसे बाद तक अप्रवासी समूह के अन्तर्गत स्त्री एवं पुरुष सम्बंध स्वमिनी तथा सेवकों के रहे होगें । लेकिन जब एक लम्बी अवधि तक

राजपूत स्त्रियों को अपने राज परिवारों अथवा राजवंशों से कोई संरक्षण प्राप्त नहीं हुआ ,तो उन्होंने कुछ शर्तों के साथ अपने सेवकों के साथ एक समझौता कर लिया होगा, इस समझौते का उद्देश्य सभी जातियों के पुरुषों एवं राजपूत स्त्रीयों को अपनी जाति सम्बंधी भेदभाव त्याग कर वैवाहिक एवं परिवारिक संबध स्थापित करना था। इस समझौते के विषय प्राप्त विवरण के निष्कर्ष इस प्रकार हैं :–

1. सभी परिवारिक विषयों में स्त्रीयों द्वारा निर्देशित करने का अधिकार होगा तथा सामाजिक, आर्थिक निर्णयों में स्त्रीयों की राय को आवश्यक रुप से माना जायेगा।
2. पुरुषों का मुख्य कार्य घर के बाहर रह कर परिवार के पालन–पोषण हेतु आजीविका प्राप्त करना तथा स्त्रीयों की आवश्यकता की सामग्री उपलब्ध कराना होगा।
3. जीवन –साथी के चुनाव एवं विवाह –विच्छेदन के क्षेत्र में स्त्रीयों की सहमति को प्रधानता दी जायेगी।
4. परिवार में पुरुषों को रसोईघर में प्रवेश का अधिकार नहीं होगा और न ही उनकी स्त्रियां पुरुषों द्वारा स्पर्श किये गये भोजन को ग्रहण करेगीं।

थारु जनजाति में स्त्री पक्ष के राजपूत घराने से सम्बंधित होने तथा अपने सेवकों से परिवारिक तथा वैवाहिक सम्बंध स्थापित होने के कारण इस जनजाति का आरभिक स्वरुप मात्रृसत्तात्मक होना स्वभाविक प्रतीत होता है, तथा इस समूह में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रीयों को विशेषाधिकार प्राप्त थे। लेकिन वर्तमान में देशकाल–परिस्थिति एवं अपने आस–पास के समाज की देखा–देखी यह समाज भी पुरुष प्रधान बन गया है।

आज स्वयं थारु समाज के वृद्व स्त्री व पुरुष इस कथन को स्वीकार करते हैं कि थारु स्त्रीयां वास्तव में राजघराने से सम्बधित थीं । इस धारणा को आज भी उनके सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन में स्वीकार तथा व्यवहार में लागू किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि थारु स्त्रियों का सम्बंध वास्तव में राजघराने से रहा होगा । परिस्थितियों ने उन्हें राजघरानों से नौकरें–चाकरों से वैवाहिक सम्बंध स्थापित करने के लिए विवश किया गया,लेकिन सामाजिक दृष्टि से उन पुरुष पतियों की दृष्टि में उनका स्थान पूर्वतः बना रहा, जो धारणा एक परामरा के रुप में आज भी विद्वमान है ।

इन सबके परे यदि थारु जनजाति में पुरुष व स्त्रीयों के पहनावे व आभूषणों के सम्बंध में प्रमाण एकत्रित किये जायें तो स्पष्ट होता है कि इन्होंने कभी भी आम वन्य जातियों या जनजातियों के समान घास–फूस व पत्तियों, तथा जानवरों के सींगों, हड्डियों, पक्षियों के पंखों व जंगलों में प्राप्त होने वाली वन्य वनस्पतियों से निर्मित होने वाली पोषाक व आभूषणों को धारण नहीं किया। इनकी पोषाक पुरुष राजपूतों के सदृश्य तथा नारियां बूटेदार लंहगा तथा ओढ़नी और सोने और चांदी के आभूषण धारण करती हैं जो कि राजस्थानी जैसा ही है। इन सब प्रमाणों के

आधार पर थारु समुदाय की राजपूत उत्पत्ति को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं बचता।

थारु समाज एवं संस्कृति

थारु जनजाति में समाज की अधारभूत इकाई परिवार है।थारु समाज अपनी ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण परस्पर समझौते द्वारा एक वर्गविहीन समाज के रुप में उभर कर सामने आया है, थारु समाज में जातिगत रुप में स्तरीकरण का अभाव है किन्तु वर्तमान में 38.5 प्रतिशत अभी भी वर्गविहीन समाज के अस्तित्व को स्वीकारते हैं, यद्यपि थारुओं में जातिगत रुप से स्तरीकरण नहीं है किन्तु इनमें गोत्रीय आधार पर स्तरीकरण पाया जाता है । इनमें सभी गोत्रों के मध्य सामाजिक सम्बंध विद्यमान हैं किन्तु व्यवहारिक रुप से विभिन्न गोत्रों के मध्य उच्चता एवं निम्नता के सम्बंध दृष्टिगत् होते हैं ।
ए0सी0 टर्नर के जनगणना रिपोर्ट 1931 के अनुसार थारुओं का विभाजन उच्च एवं निम्न स्तर पर किया है। श्रेष्ठ गोत्रों में – 1.बाठा 2. बिरतिया
3. दहायत 4. बड़वायत तथा 5. महातुम आदि हैं । इन गोत्रों की श्रेष्ठता का आधार राजपूत राजवंश से उत्पत्ति तथा उनकी रक्त पवित्रता को बताया गया है।

निम्न गोत्रों में – 1. रावत 2. धंगरा 3. खुंका 4. रजिया 5. सांसा 6. बुक्सा
6. जुगिया आदि। जिनकी उत्पत्ति निम्न जातियों के पुरुषों के संसर्ग से मानी जाती है।
थारु लोग गोत्रीय धराने को कुरी (कुर्माटब्बर) कहते हैं । थारु समाज कुरी प्रधान है।
बड़वायक, बाठा, रावत, वृतिया माहतो और डहैत आदि कुरी बी0डी0 पांडे जी ने बताया है। इनमें बड़वायत बड़े समझे जाते हैं। बड़वायत एक प्रकार से थोकदार से हैं । इसके अतिरिक्त दो एक और भी कुरियां हैं जैसे सौसा कुरी – तेल पेरने से कुछ कम समझें जाते हैं लेकिन हैं थारु।

गुंसाईगिरी या गिरनामाः– यह थारु जैसे ही हैं, उन्हीं में रहते हैं लेकिन उनमें व्याह या विवाह नहीं करते ,चाहे औरतें एक दूसरे की भगा लें ,ऐसा पहले इनके संदर्भ में कहा जाता था। उनके संदर्भ में कहा जाता है कि लडाई से भागे तथा लोथ के नीचे छिप गये इसलिए कम समझे जाते हैं । रावत अपने को धारानगरी के पवार कहते हैं ।

थारु समाज में छुआछूत नहीं है। अपने नाम के पीछे सभी थारु सिंह लगाते हैं जैसे हिन्दू राजपूत लोग किया करते हैं।

परिवारिक संरचनाः–

परिवार सामाजिक संगठन का केन्द्र बिन्दु है। थारु समाज में परिवार के लिए कुटुम्ब या घर का प्रयोग किया जाता है। थारु समाज में परिवार पितृवंशीय एवं पितृसत्तात्मक होता है। वंश पिता के नाम से चलता है लेकिन परिवार में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के समान अथवा कुछ क्षेत्रों में उन से भी उच्च है। परिवार में पिता अथवा परिवार का वयोवृद्व पुरुष ही परिवार का मुखिया होता है। परिवार के पुरुषों का मुख्य दायित्व धनोपार्जन है तथा रोटी, कपड़ा और मकान की समस्यायों को हल करना है। स्त्रियों का दायित्व गृहस्थी की व्यवस्था, भोजन पकाना, बच्चों का लालन–पालन करना। इसके अतिरिक्त घर की अनेक जिम्मेंदारियों को बडे मनोयोग से निभाती हैं ।
थारु समुदाय परिवारों की संख्या एकाकी परिवारों की अपेक्षा कम देखने को मिलती है। संयुक्त परिवारों में प्रायः माता पिता तथा विवाहित लड़के उनकी संताने तथा अविवाहित लड़के और लड़कियां एक साथ निवास करते हैं । लेकिन कुछ परिवारों में पति–पत्नी तथा उनके अविवाहित लड़के–लड़कियां एक साथ निवास करते हैं लेकिन कुछ परिवारेां में पति–पत्नी तथा उनके अविवाहित लड़के लड़कियों के अतिरिक्त पति या पत्नी में से किसी एक पिता अथवा मां और पति के अविवाहित भाई बहिन या पत्नी के भाई बहिन कभी–कभी पत्नी के पूर्व पति के बच्चे भी निवास करते हैं, जिनके लिए एक ही चूल्हा जलता है।

वर्तमान समय में अब संयुक्त परिवारों की संख्या कम होती जा रही है। बच्चे नौकरी लगने एवं विवाह के पश्चात परिवार से अलग रहने लगे हैं ।
संयुक्त परिवार का यह लाभ है कि जब किसी परिवार में कोई तीज– त्यौहार, उत्सव, पूजा–पाठ विवाह, मृत्यु और इसी प्रकार से कोई संस्कार सम्पन्न किया जाता है तो प्रायः सभी भाई संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना से उन कार्यों का निर्वहन करते हैं । प्रायः अपनी अपनी आर्थिक क्षमता अनुसार इन कार्यों के निस्पादन में आवश्यक व्यय व योगदान भी देते हैं ।

चूंकि संयुक्त परिवार व्यवस्था –वृद्धों असहाय व्यक्तियों, बेरोजगारों के लिए आर्थिक बीमा व सुरक्षा का कार्य करती है। वास्तव में संयुक्त परिवार में कमाने व उत्पादन कार्य करने वालों की संख्या आश्रितों की अपेक्षा कम देखने को मिलती हैं। परिवार में बडे –बूढों के प्रति श्रद्वाभाव,आज्ञाकारिता व उनकी भावनाओं के अनुरुप कार्य करने की परम्परागत बाध्यता के कारण ये कमाऊ व्यक्ति अपनी क्षमता अनुसार उत्पादक व उपार्जन सम्बंधी कार्य करते हैं और आर्थिक अभावों व आर्थिक बोझ के पश्चात भी संयुक्त परिवार की व्यवस्था से अलग अपना एकांकी परिवार बसाना सामाजिक परम्परों और नैतिकता के विपरीत समझते हैं।

परिवार का मुखिया जिसे सयाना कहा जाता है, का अन्य सभी क्षेत्रों के साथ–साथ आर्थिक क्षेत्र में भी एकाधिकार रहता है तथा उसकी इच्छा के आदेशों के अनुरुप ही आर्थिक क्रियायों का निष्पादन किया जाता है। धर के अन्य पुरुष व्यक्ति, मुखिया द्वारा निर्देशित आर्थिक क्रियाओं के सम्बंध में न तो कोई तर्क वितर्क करने की आवश्यक्ता मैहसूस करते हैं और न ही इस प्रकार का कोई दुस्साहस ही कर पाते हैं । अत': परिवार का मुखिया देशकाल परिस्थितियों के अनुरुप ज्ञान अनुभव तथा शिक्षा के अभाव के कारण कोई उपयुक्त व रचनात्मक सुझाव या कार्य प्रणाली सुझाने में सर्वथा असफल रहता है। और जीविकोपार्जन के परम्परागत तौर–तरीकों के अनुपालन को अधिक महत्व देता है, जिनकी आर्थिक उपादेयता बदलती परिस्थितियों में तथा बढ़ती जनसंख्या अनुकूल सिद्व नहीं हो पाती, जिसके परिणामस्वरुप ऐसे थारु परिवारों की आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हो पाता। थारु समाज में स्त्रियों को अत्याधिक सम्मानित माना जाता है, धर के पुरुष मुखिया के कारण –व्यवहारों के निर्धारण में परिवार की ज्येष्ठतम स्त्री की ही भूमिका निर्णायक रहती है। थारु संयुक्त परिवारों में पुरुष मुखिया का अपने परिवार के सदस्यों के प्रति समतावादी दृष्टिकोण देखने को मिलता है। आदिवासी समाज होने के कारण उनके समाज में पंचायत व्यवस्था सुदृढ़ है। पंचायत सामाजिक अनुशासन को बनाये रखती है, झगड़ों का निपटारा करता ही है तथा समस्त गांव के हित में कार्य करती है। गांव में शान्ति व्यवस्था बनाये रखना तथा अपने समाज की सांस्कृतिक पहचान को बनाये रखने का काम इस पंचायत का होता है। गांव में सांस्कृतिक उत्सव के अवसर पर हर परिवार की उसमें उपस्थिति आवश्यक मानी जाती है। पंचायत प्रणाली के कारण ही थारु समाज परस्पर सहायता करने को तत्पर रहते हैं ।

महिलाओं की स्थिति :–

उपरी तौर पर थारु समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था है लेकिन वास्तव में यहां पर महिलाओं को इतने अधिकार हैं कि पुरुषों की स्थिति महिलाओं की तुलना में न के बराबर हैं । इसका कारण थारुओं का तथाकथित अतीत है। थारु स्त्रियां कर्मठ तथा धैर्यवान होती हैं । जीवन की समस्यायों से झूझने में पुरुषों से पीछे नहीं रहती हैं । हस्तकला,नृत्य,गायन,धनोपार्जन,व्यापार जीवन – साथी आदि चुनने में भी उन्हें पुरुषों के समान ही महारत हासिल है। यह प्रसन्नचित रहने वाली होती हैं। विख्यात मानव विज्ञानी डी0एन0मजूमदार के मतानुसार 'सम्भवतः तराई के थारुओं में कभी मातृसत्तामक व्यवस्था रही होगी ,जिसके कारण उनमें आज भी महिलाओं को प्रधानता दी जाती है।'
पारिवारिक मामलों में थारु महिलाओं के आगे पुरुषों की नहीं चलती है। घरेलू जानवरों तथा खेती की उपज पर उनका अधिकार है। महिलायें जो अपने लिए गहने, कपड़े तथा अन्य चीजें खरीदती या बनाती हैं अथवा उन्हें अपने मायके से प्राप्त होती हैं उन पर भी पूरा हक उन्हीं का होता है। दूसरी ओर जब पुरुष खुद

अपने इस्तेमाल की किसी वस्तु को देना या बेचना चाहे तो इसके लिए भी उसकी पत्नी की सहमति आवश्यक है। कहा तो यह भी जाता है कि पहले थारु महिलायें पुरुषों को अपने भोजनालय में आने तक नहीं देती थीं तथा उन्हें पानी के वर्तनों को छूने तक नहीं दिया जाता था। खाना भी रसोई से बाहर ही परोसा जाता था। लेकिन वर्तमान में शिक्षा के प्रचार व प्रसार अन्य समाज के सम्पर्क में आने के बाद इस स्थिति में बहुत बदलाव आया है ।

जिस प्रकार एक बीज को बोकर उसके वृक्ष होने तक विभिन्न अवस्थाओं पर उसकी देख–भाल की जाती है, उसी प्रकार शिशु के गर्भ में प्रवेश करने के समय से उसके जन्म एवं अन्त में मृत्यु तक देख–भाल की जाती है। यह देखभाल मानव जीवन के कई चरणों में होती है, जिससे उसका शारीरिक, मानसिक एव अध्यात्मिक विकास हो सके ।इस देख–भाल को प्रचीन ग्रंथों में संस्कार कहा जाता है। प्राचीन ऋषियों ने संस्कार की व्यवस्था अनेक रुपों में की है। जैसाकि महार्षि जैमिनी के अनुसार ' संस्कार ही कर्म का बीज एवं सृष्टि का कारण है'।

'कर्म बीज संस्कारः 'तन्नि मित्ता सृष्टि'। शंकराचार्य ने कहा है –'संस्कार के द्वारा ही दोषापनयन एवं गुणाधान होता है'। हिन्दुओं के संस्कारों की संख्या सोल्ह बताई गयी है। लेकिन जहां तक थारु जनजाति के संस्कारों का प्रश्न है, थारुओं में निम्न संस्कार सम्पन्न किये जाते हैं:

गर्भाधान संस्कारः थारु महिलाओं को गर्भ धारण करने से लेकर बच्चे के जन्म तक कुछ सावधानियां बरतनी पडती हैं। जिसको सूर्य–ग्रहण के दिन बाहर कदापि नहीं आना होता है। यदि उनके लिए किसी कारणवश ऐसा करना आवश्यक ही हो तो उसको अपने पेट पर राख मल देनी होती है। तथा पेट को कदापि खुला नहीं रखना होता है। प्रसववती थारु नारी के लिए भूतहे स्थानों में जाना, शव को छूना, मुर्दाघाट जाना तथा रात में बाहर निकलना निषिद्व है। प्रत्येक थारु प्रसववती महिला को भरारे द्वारा बनाया गया तावीज पहनना होता है। उनका विश्वास है कि भरारे के जादुई शक्ति वाले मंत्रों से अभिसिंचित तावीज को पहनने से पेट में पलने वाले बच्चे पर किसी की कुदृष्टि का असर नहीं पड़ सकता। इस तरह यह तावीज गर्भावस्था में महिला और उसके बच्चे की काली शक्तियों से रक्षा करता है।
थारु प्रसव से पूर्व ही आने वाले बच्चे के लिंग के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए अति उत्सुक रहते हैं। अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर गर्भवती महिला के शरीर की स्थिति के आधार पर पूर्वानुमान लगाया जाता है– जैसे यदि गर्भवती महिला का दांया पांव या पेट या दायां भाग अधिक भारी हो तो बालक के जन्म होने की अधिक संभावना रहती है। इसके विपरीत स्थिति में बालिका की ।
चलते हुए यदि दायां पांव घिसट कर या धीरे से चला जाये तो पुरुष शिशु जन्म की आशा की जाती है।

गर्भावस्था की अन्तिम स्थिति में महिलाओं के खुश मिजाज तथा बातूनी होने से बालक के जन्म की आशा की जाती है। यदि गुमसुम तथा उदास रहे तो बालिका होने की अधिक गुंजाइश होती है।

नामकरण संस्कार– (छठी) – प्रसव के पांच दिन तक बच्चा–जच्चा को अपवित्र माना जाता है। उस दौरान घर में न तो कोई समारोह मनाया जाता है, और न ही नवजात शिशु का बाप उसको देख सकता है। छठे रोज मां और शिशु का शुद्धिकरण समारोह मनाया जाता है। उसको थारु छठी कहते हैं उस दिन जच्चे के कमरे को गोबर से लीपा जाता है। कमरे में जो आग जलती रहती है उसे हटा दिया जाता है। उसके बदले में नई अंगीठी तैयार की जाती है। थारुओं को ऐसा विश्वास है कि यदि अंगीठी जलाने में देरी हो तो उससे नवजात शिशु अल्पआयु होता है । जच्चे बच्चे को नहलाने के पश्चात परिवार के साथ कुलदेवता की पूजा के लिए घर के आंगन में मिट्टी के पात्र में दीपक जलाया जाता है । जच्चा–बच्चा अपनी धाय मां के देवताओं से आर्शीवाद प्राप्त करने के लिए आंगन में उपस्थित हो जाते हैं । इस अवसर पर उपस्थित महिलायें उपयुक्त वधाई व खुशी के गीत गाते हैं छठी के दिन ही अपने मनपंसद का नाम रख दिया जाता है । थारु लोग इस संस्कार में ब्राहमण को नही बुलाते हैं। बच्चे का नाम देशकाल–परिस्थति के अनुसार रख दिया जाता है। जैसाकि एक दिन गांव में बच्चे के जन्म दिन पर पुलिस आई हुई थी तो उस बच्चे का नाम पुलिसिया रख दिया गया । लेकिन वर्तमान में अपने पड़ोसी पहाड़ी, पंजाबी तथा हिन्दी फिल्मों के संपर्क में आने से फिल्मी सितारों के नाम पर रखे जाते हैं।

शिशु मृत्यु विरोधी उपाय–

थारु लोग भूत–प्रेत में अधिक विश्वास रखते हैं । कुदृष्टि से नवजात शिशु की रक्षा हेतु उसकी मामी उसके कान छेद देती है। फिर उसको चावल में तोला जाता है। इन चावलों को बेचने से प्राप्त धन से शिशु के लिए नये कपड़े खरीदे जाते हैं। शिशु को तोले गये चावलों को शिशु की मामी अथवा परिवार के किसी दूसरी महिला के हाथों बेचे जाते हैं। थारु समाज का ऐसा विश्वास है कि दूसरी महिला द्वारा बच्चे को खरीद लिए जाने के फलस्वरुप उसका सौभाग्य शिशु को बुरी शक्तियां का कोपभाजन बनने से बचायेगा।

विवाह संस्कार–

मानव समाज में विवाह एक प्रचीन तथा महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है ,जो कि सार्वभौमिक है तथा सभी समाजों में किसी न किसी रुप में पाई जाती है। आश्रम

व्यवस्था में गृहस्थ आश्रम में विवाह करना एक अनिवार्य कर्म ठहराया गया है। प्रायः विवाह का मुख्य उद्देश्य स्त्री तथा पुरुष के यौन संबधों को नियन्त्रित तथा नियमित करना माना जाता है। परन्तु हिन्दू धर्म के अनुसार के विवाह के एक नहीं अनेक उद्देश्य हैं– जिन में धर्म तथा प्रजा (संतान) प्रमुख है और यौन संबधों की सन्तुष्टि अन्तिम उद्देश्य है।
विवाह समाज द्वारा मान्यता प्राप्त एक सामाजिक संस्था है जिसमें स्त्री पुरुष को काम– वासना की संतुष्टि के लिए समाज द्वारा स्वीकृति प्रदान की जाती है। समाज की यह स्वीकृति संस्कारों को पूरा करने के पश्चात ही प्राप्त होती है। अन्य शब्दों में समाज द्वारा अनुमोदित स्त्री–पुरुष के संयोग को विवाह कहते हैं।
थारु समाज में भी विवाह संस्कार की अपनी परम्परायें हैं। जनजाति होने के कारण इस संस्कार में भी कुछ विशिष्टतायें हैं । वर्तमान समय में इनकी रसमें कुछ हद तक हिन्दू कर्मकाण्डों से भी प्रभावित दिखाई देती हैं, किन्तु इनके अधिकांश रीति–रिवाज़ जनजातीय हैं।

थारुओं के विवाह मुख्यतः दिसम्बर तथा जनवरी में सम्पन्न होते हैं । थारु समाज में विवाह पहले दो प्रकार के होते थे ।

दुल्हन को हरण करके जो शादी की जाती थी उसको 'काज' कहते थे तथा बाकयदा रजाबंदी के साथ दुल्हन को खरीद कर जो शादी होती थी, उसको 'डोल' कहते थे। किन्तु हिन्दुओं के सम्पर्क में आने से अब इस प्रकार की शादियां नहीं होती हैं। शादी दोनों पक्षों के माता–पिता अथवा अभिभावकों की सहमति से होती हैं। थारु समाज में रिस्ते की बात करवाने वाले को 'मॅझपतिया' कहते हैं , वही दोनों पक्षों को परस्पर सम्पर्क में लाने में सहायता करता है। रिस्तों को औपचारिक रुप से पक्का करने के लिए सगाई होती है, जिसको थारु 'दिखनौरी' कहते हैं ।
थारु समाज में विवाह की तिथि चयन में मॅझपतिया की सलाह ली जाती है। उपयुक्त महीना विवाह के लिए दिसम्बर–जनवरी माना जाता है तथा विवाह समारोह के लिए वृहस्पति या रविवार को चुना जाता है। शादी की तिथि तय होने के पश्चात् अपने रिस्ते नातेदारों को शादी में उपस्थित होने का निमंत्रण संयुक्त रुप से भेजा जाता है। निमंत्रण पत्र के साथ वर पक्ष से मिठाई भेजी जाती है और वधु पक्ष की तरफ से पान व सुपारी भेजी जाती है।
शादी के दिन दुलहन की मां 'सरदेना' रसम अदायगी के लिए कुछ अन्य महिलाओं के साथ गांव के मुखिया के घर जाती हैं वह अपने हाथ में पीतल की थाली में थोड़ा चावल और उसके उपर कुछ रुपये रखती है । वहां पर मुखिया की पत्नी उसका स्वागत करती है। और थाली में अपनी ओर से भेंट के रुप में चावल व रुपये रख देती है। इस तरह महिलायें नवदंपत्ति के सुखी वैवाहिक जीवन की मनोकामना करती हैं। ऐसी ही रस्म वर पक्ष में भी मनाई जाती है।

महिलायें आंगन में चावल के आटे से एक वर्ग बनाती हैं और इसके चारों कोनों पर घट–कुंभ और दीपक जला कर रख दिये जाते हैं और उसके मध्य में एक पत्तल के उपर थोड़ा चावल छिड़क कर उसको लकड़ी के तख्ते के टुकड़े से ढक देते हैं और उसके उपर पीतल की थाली रखी जाती है, जिसमें कच्ची पिसी हल्दी, सरसों का तेल तथा हरी घास रखी जाती है। थाली के इर्द–गिर्द तख्ते पर सात चाकू और दो छोटी तलवारें रखी जाती हैं ।

बाहर आंगन में चलने वाली रस्म के बाद भीतर वर /वधु को मांगलिक स्नान करवाया जाता है, उन्हें अपने– अपने धरों की उंची चौकी पर बैठा कर उनके बदन पर सरसों के तेल तथा पिसी कच्ची हल्दी से मालिश की जाती है। वर को उसकी बहिनें नहलाती हैं और वधु को उसकी भाभियां। लेकिन वर को नहलाने से पूर्व एक और रस्म अदा की जाती है जिसमें शादी में शामिल होने के लिए आमंत्रित लोगों को जिनको थारु 'न्यौतारिया' कहते हैं , बारी– बारी से वर के पास आते हैं और उसके पास रखे सरसों के तेल व पिसी कच्ची हल्दी के घोल से सिर को भिगोते हैं तथा धन के रुप में अपना 'न्यौता' वहीं पर रखी थाली में डाल देते हैं। यह न्यौता रिवाज़ के तौर पर आने वाले खर्चे में अपने योगदान के रुप में ले लिया जाता है। वर इसमें अधिकांश अपनी मां को दे देता है तथा शेष को स्वतः को नहलाने वाली बहिनों को वितरण के लिए छोड़ देता है।

हल्दी व सरसों के तेल से मालिश की रस्म के पश्चात वर की बहिनें उसे साफ पानी से नहलाती हैं और वधु को उसकी भाभियां। तत्पश्चात वर को रजाई में तथा वधु को कम्बल में लपेट दिया जाता है। थारुओं की मान्यता है कि इस मांगलिक स्नान के बाद दुलहन पराये घर की हो जाती है तथा बारात के आगमन पर वर द्वारा दिये गये वस्त्रों को ही पहनेगी। इस प्रकार थारु दुलहन को बारात के आने तक ओढ़ने से लिपटे ही रहना होता है।

वर बारात को लेकर वधु के घर के लिए चलता है ,तो वधु के गांव की सीमा पर बारात को पत्थरों की बौछार का सामना करना पड़ता है, लेकिन अब यह बौछार केवल रसम होती है, जिसको थारु 'दिलमारी' कहते हैं । यह थारुओं की उस प्रचीन प्रथा की निशानी है जिसके अन्तर्गत दुलहन को लड़ाई में जीत कर हासिल किया जाता था। लेकिन वर्तमान में यह प्रथा विलुप्त हो गयी है। विवाह में थारु पंडितों को नहीं बुलाते । विवाह का पूरा कार्य, वर का जीजा तथा वधु की भाभियां करती हैं । थारु समाज में विवाह के फेरे के समय वर का जीजा व वधु के साथ उसकी बड़ी भाभीयां होती हैं । वर का जीजा फेरे के समय मंत्रोउच्चार करता है। पहले छः फेरें मे वर आगे होता है और अन्तिम फेरे में वधु आगे होती हैं।

विवाह के प्रकारः

नेसफील्ड रिजेले ने अपने ग्रंथ में थारुओं के सात प्रकार के विवाह का उल्लेख किया है। थारु जनजाति के विवाह केवल माघ के महीने में होते हैं । बाद में गौने

की प्रथा है जो केवल चैत एवं बैसाख में ही सम्पन्न होते हैं । सात प्रकार के विवाह निम्न प्रकार से होते हैं :–

1. खासी ब्याह या धर्म विवाह
2. खर्चा विवाह
3. चुटकुटा विवाह
4. उधरा ब्याह या प्रेम विवाह
5. घूस विवाह
6. पतिभ्राता विवाह
7. साली विवाह

भोजनः

तराई के थारू चावल तथा गेहूँ की खेती करते हैं। इनका प्रिय भोजन चावल व मछली है। भोजन में अण्डा, मछली का प्रयोग काफी मात्रा में करते हैं। सूखी सब्जी को चखना कहते हैं।मेहमान के आने पर मुर्गा, अंडा, मछली, शराब से सत्कार किया जाता है। थारू महिलाओं का सबसे बड़ा शौक मछली का शिकार करना है। जिसके लिए कोसों दूर बड़ी संख्या में गांव का गांव चला जाता है। बरसात के दिनों में ये लोग मछली अपने जाड़ों के दिनों के लिए सुखा कर रख लेती हैं । जंगली जानवरों का शिकार ये "खाबर"से करते हैं जो एक रस्सों का विचित्र जाल सा होता है। मछलियां मारने के लिए अनेक प्रकार के ढंग हैं – जाल, गोदड़ी आदि से मारते हैं । जाल ,सूत का तथा घींवरी–गोदड़ी बांस के छिलकों से बनाते हैं। थारू लोग त्यौहारों में गुलगुले ढिस्सा–फरा, मीठी पूरी, मीठा भात, सिवई, कतरा,मिसौला, पितौला, सिधरा का नून, खुजरिया आदि

पोशाक तथा आभूषणः– एक जमाने में तराई घनघोर जंगल थे तो उनमें निवास करने वाले थारू कबीले के लोग भी लगभग बनवासी जीवन ही

व्यतीत करते थे। इसी वजह से हाल के कुछ दशक पूर्व तक थारू नर–नारी नाममात्र के वस्त्र पहनते थे। तराई में वनों के सफाये और उनके साथ नये निवासियों के आगमन के साथ थारूओं का उनके सम्पर्क में आना लाज़मी हो गया। इस सम्पर्क में थारूओं को नई सभ्यता की नई रोशनी के

अनुरूप स्वतः – को बदलने को अनुप्रेरित किया, इस बदलाव का असर पहनावे पर भी पड़ा। थारू महिलाओं के पोशाक में घघरिया, अरघना, फुतई, चुनरी, कमरबन्द, कुण्डल सकरी,पौंची,खड़वा,कुटला,परिछनकुटला,ककई,बंकड़ा बिछया आदि, पुरूषों के पोशाकों में धोती, टोपी, कुर्ता, झगिया आदि। महिलाओं को चटख रंग पंसद है। अब थारू महिलायें, साड़ी ब्लाऊज, पुरूष जीन्स पैन्ट भी पहनने लगे हैं।

अतिथि सत्कारः– अतिथि सत्कार इस समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। अतिथि को देवता तथा सत्कार को कर्तव्य तथा धर्म माना जाता है। अतिथि को सत्कार में शराब पिलाई जाती है। थारू जिसे अपना मित्र बनाता है उसे दिलवर कहता है। ये दोनों मित्र एक दूसरे का नाम न लेकर इस शब्द से सम्बोधित करते हैं।

शिष्टाचार– थारू समाज में अपने से बड़े व्यक्ति को उसके नाम से सम्बोंधित करना अशिष्टता मानी जाती है । पुरूषों के लिए उनकी उम्र के अनुसार चाचा (काकू) मामू, ददा कहा जाता है। छोटों को नाम से पुकारा जाता है । पति–पत्नी एक दूसरे का नाम न लेकर अपने बच्चों के नाम के साथ अमुख के पिता या मां का सम्बोधन करते हैं। दोनों हथेलियो को फैला कर किसी वस्तु को ग्रहण करना शिष्टाचार के अनुकूल है। एक हाथ से उठा लेना अशिष्टता का सूचक है। शिष्टता सूचक हेतु राम–राम शब्द कहा जाता है। छोटी औरतें पायलागन कहती हैं। ब्राहमण को बमना कहते हैं उसे भी पायलागन कहते हैं।

अन्त्येष्टि संस्कारः–

मनुष्य की मृत्यु के पश्चात के कियकलापों को अन्त्येष्टि संस्कार के नाम से पुकारा जाता है। थारुओं की मान्यता है कि मृत्यु के बाद आत्मा अपने मूल ग्रह को लौट जाती है, लेकिन उसके साथ ही उनका पुनर्जन्म में भी विश्वास है । मृत्यु के पश्चात शव को चारपाई पर उत्तर दक्षिण दिशा में आंगन में रख दिया जाता है और यहां पर लोग अन्तिम दर्शनों तथा शोक प्रकट करने के लिए इकट्ठा होते हैं। चारपाई पर एक दीपक ,मृत प्राणी के पुराने वस्त्र तथा कुछ पैसे रख दिये जाते हैं। थारुओं को विशवास है कि मृत व्यक्ति को इस जीवन के पार भी परलोक की यात्रा करनी होती है। यह सामान उसकी इस परलौकिक यात्रा में काम आने के

लिए ही रखा जाता है। अर्थी के साथ दराती, कुल्हाड़ी और फावड़ा भी ले जाते हैं। थारुओं का मत है कि शव के इर्द–गिर्द भूत–प्रेत मंडराते रहते हैं। इन हथियारों के कारण वे पास नहीं फटक सकते । गांव की सीमा तक शव का सिर आगे होता है, जबकि सीमा के बाहर स्थिति उल्ट जाती है। थारु मानते हैं कि दिवंगत का प्रेत अपना बदला लेने के लिए वापिस आ सकता है। गांव की सीमा के बाहर से शव के पांव शमशान की ओर कर दिये जाने से प्रेत रास्ता भटक जाता है और गांव में प्रवेश नहीं कर पाता।शव को जलाने से पूर्व शव यात्रा में गये लोग अपनी श्रद्वानुसार पैसा चढ़ा कर अन्तिम राम–राम करके सलाम देते हैं ,जब सभी इस प्रक्रिया को कर लेते हैं तब पैसा उठा लिया जाता है। उस पैसे से शवयात्रा में गये हुए लोगों को मिठाई, घर आते समय मार्ग में रोक कर दी जाती है। शवको जलाने के पश्चात शमशान में ही एक स्थान पर कुष को लकड़ी के साथ सफेद कपड़े में लपेटा जाता है । उसे जमीन पर गाड़ा जाता है और बारी बारी से शव यात्रा में भाग लेने गये व्यक्ति उसे जल चढ़ाते हैं । अन्त में जल को अपने बदन पर छिड़कते हैं । दिवंगत व्यक्ति का भूत गांव में लौट कर किसी को तंग न कर सके, वे घाट से रवानगी से पूर्व गीली मिटटी के गोले बनाते हैं और उन्हें सात बार अपने सिर के उपर सात बार घुमाने के बाद फैंक देते हैं । चलते हुये वे पीछे कदापि नहीं देखते।रास्ते में सात जगहों पर गढ्ढे बना कर उनमें कांटों की शाखायें रख देते हैं । थारु समाज की ऐसी मान्यता है कि ऐसा करने से प्रेत घर में नही आ सकता अतः मार्ग में ही भटक जाता है।

सभी शव यात्रा में भाग लेने गये लोगों को वापिसी में मृत व्यक्ति के घर जाना आवश्यक होता है। घर में पहुचते ही घर के लोग अन्तिम विलाप करते हैं। सभी को घर के आंगन में बैठाया जाता है, दो मिन्ट का मौन रखा जाता है। मौन के बाद आपस में राम– राम से अभिवादन करते हैं और उसके पश्चात अपने अपने घरों को चले जाते हैं।

थारु जनजाति की सांस्कृतिक स्थितिः– व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों में संस्कृति सर्वोपरि है। विभिन्न व्यक्तियों के विचारों, भावात्मक लगावों, मूल्यों तथा सोचने एवं रहन–सहन के ढंगों में अन्तर दिखाई पड़ता है। यह संस्कृति के ही कारण है। उदाहरणार्थ पाश्चत्य समाज में तालाक, वैवाहिक जीवन का एक सामान्य अंग है, जबकि हिन्दू समाज में इसे अच्छा नहीं माना जाता है। इसी प्रकार रीति–रिवाज, विश्वास,खान–पान आदि की भिन्नता पाई जाती है।

संस्कृति के अन्तर्गत व्यक्तियों की आदतों, विश्वासों तथा परम्पराओं के सभी रुप आते हैं। जो कि समाज का सदस्य होने के नाते व्यक्ति को सुलभ हैं। इस प्रकार संस्कृति में व्यक्ति के समस्त संकमित तथा अर्जित व्यवहार का समावेश होता है।

जैसा कि किम्वाल यंग ने संस्कृति के अन्तर्गत मनुष्य की सम्पूर्ण सामाजिक विरासत, एक पीढ़ी से दूसरी पीढी को हस्तान्तरित होने वाली समस्त आशाओं और अनुभवों की सम्पूर्णता का समावेश माना जाता है। फ्रॅक महोदय ने संस्कृति को एक प्रभाव बताया है, जो कि व्यक्ति के व्यक्तित्व के विचारों, धारणाओं तथा विश्वासों आदि के द्वारा जो उसे सामुदायिक जीवन से प्राप्त होते हैं और सामुदायिक सॉचे में ढालने की चेष्टा करता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि संस्कृति पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान, विश्वास, आदर्श, विचार, साहित्य, कला तथा मूल्य हैं, जो समाजीकरण और शिक्षण की प्रकिया में व्यक्ति के मानसिक व्यवस्था में अन्तर्विष्ट हो जाती हैं। इसे व्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से अन्य व्यक्तियों को सिखाता है तथा स्वयं भी सीखता है। अर्थात यह निरन्तर चलने वाला प्रतीकात्मक संचार है।

जहां तक थारु जनजाति के लोगों का प्रश्न है, जनजाति के लोग हिन्दू धर्म में आस्था रखते हैं और मानते हैं तथा ये लोग मुख्य रुप से भगवान शिव तथा देवी पर विश्वास करते हैं। प्रत्येक घर में भगवान शिव की मूर्ति स्थापित की जाती है जिसे वे "बुढे बाबा" कहते हैं। ये लोग पार्वती जी की पूजा भी करते हैं। प्रत्येक थारु जनजाति के आंगन में मिट्टी के देवी–देवता बनाये जाते हैं। ये उनकी पूजा करते हैं। इसके अतिरिक्त पूरे गांव का किसी एक स्थान पर मिट्टी का मन्दिर बना होता है, इसे भुइया कहते हैं। ये लोग वहां पर विशेष अवसरों (शादी–ब्याह) पर पूजा करने के लिए जाते हैं। थारु जनजाति के लोग बलि भी चढ़ाते हैं। इनका विश्वास है कि बलि चढ़ाने से देवी–देवता प्रसन्न होते हैं।

थारु जनजाति में देवी–देवताओं पर विश्वास हान के साथ–साथ जंतर–मंतर की प्रथा भी प्रचलित है। ये लोग इस बात पर विश्वास करते हैं कि प्रेत आत्मायें, जिसका कि संस्कार ठीक से नहीं होता, वे भूत बन जाती हैं। उनसे बचने के लिए ये लोग "बुढ़े बाबा" की प्रार्थना करते हैं। जिसके फलस्वरुप इनके गांव में भरारे (भूत प्रेत उतारने वाला) भी होता है जो शिव व पार्वती को मना कर उनके भूत–प्रेतों को दूर करता है। ऐसा उनका विश्वास है। थारु लोग जादू–टोना पर भी विश्वास करते हैं। ये लोग व्यक्ति के बीमार होने पर उनके ऊपर किसी बाहरी हवा का प्रभाव मानते हैं। इसलिए यह अपने घर में भरारे को बुलाते हैं तथा उससे बीमार व्यक्ति का इलाज करवाते हैं। ये लोग बीमार व्यक्ति को उस समय डाक्टर के पास ले जाते हैं जब भरारे कुछ नहीं कर पाते हैं।

उत्सव एवं त्यौहार तथा मेले समाज के मनोरंजन, खान–पान और सामूहिक मिलन के साधन तो होते ही हैं, साथ ही उन्हें मनाने की कोई न कोई परम्परा तथा उद्देश्य होता है। थारु जनजाति में भी कुछ विशिष्ट उत्सव व त्यौहार तथा मेले हैं, जो निम्नवत् हैं:–

बसन्त पंचमी–बसन्त पंचमी का थारु जनजाति समाज में विशेष महत्व है। इस दिन थारु लोग दूर से दूर स्थान में जाकर स्नान करना परम धर्म मानते हैं। इस दिन

काशी, बनारस, गंगासागर में जाकर स्नान करने का विशेष महत्व है। थारु जनजाति के बुजुर्गों का कहना है कि – "उनके पुरखे कहते थे कि बसंत पंचमी के दिन जो स्नान नहीं करता है उसका (अगला जन्म) छछून्दर " का होगा। इसलिए बसन्त पंचमी के दिन छोटे– छोटे बच्चों को भी स्नान जरुर करवाते हैं। आस–पड़ोस की नदियों में जाकर स्नान करते हैं। घरों में उस दिन लोग खिचड़ी का दान करते हैं तथा खिलाते है "।

कार्तिक पूर्णमासी–

थारु लोगों में कार्तिक पूर्णमासी का बड़ा महत्व है। इस दिन ये लोग अपनी–अपनी बहिन, बेटी तथा भान्जियों को लिवाकर लाते हैं। इस दिन से थारु लोगों में खिचड़ी की शुरुआत की जाती है। अतः खिचड़ी के साथ उसके चारों ओर (दही, मूली, घी, आचार) को भी रखा जाता है। विशेषकर इस दिन खजूरे पकाये जाते हैं, (सहित स्नान करने जाते हैं। संभ्रान्त लोग अब हरिद्वार, काशी ,मथुरा तथा प्रयाग भी स्नान हेतु जाने लगे हैं। लेकिन निर्धन लोग आस–पड़ोस की नदियों में स्नान करने हेतु अपने मित्रगणों को भी साथ ले जाते हैं।

वहां नदी के घाट में गंगाा स्नान से पूर्व दिन सपरिवार तथा नातेदारों को साथ लेकर जाते हैं और रात्रि में पंडित द्वारा कथा पाठ करवाया जाता है। रात्रि में ही हलुआ –पूड़ी या खिचड़ी का भोज किया और करवाया जाता है। गंगा स्नान कार्तिक पूर्णमासी को स्नान करके खुशी–खुशी घर लौट आते हैं। इस जरह थारु लोग(कार्तिक पूर्णमासी) का पर्व मनाते हैं।

नागपंचमी:– नागपंचमी सावन के शुक्ल पक्ष के पंचमी के दिन मनाई जाती है। थारू महिलायें इस दिन अपने मकानों की दिवारों में काली स्याही से नाग की मूर्तियां (तस्वीर) बनाती हैं। थारू लोगों के भरारे (थारूओं का प्रथागत पुरोहित) लोग अपने जादूई मंत्रों की अजमाईस के लिए नागपंचमीं का घट जमाते हैं। भरारा एक मटकी में मंत्रों द्वारा विष भरता है, मंत्रों द्वारा ही उस विष को निकालते हैं। और मंत्रों द्वारा गा–गा कर खूब ऊंचे स्वरों से अपने शरीर में भरारे चाबुक मार–मार कर प्रदर्शन करते हैं । आस–पड़ोस गांव के लोग इकट्ठा हो कर भरारे के इस प्रदर्शन को देखते हैं । यह कम दोपहर बारह बजे से सांय चार बजे तक चलता है।

थरूवाटी होली

भारतीय हिन्दू समाज में खेली जाने वाल होली से ळिान्न थरूवाठी होली एक अलग ही अंदाज के साथ खेली व मनाई जाती है। जैसाकि इन वन्य समाज (थारू समाज) में हर शुभ कार्य में पूजा हो, अनुष्ठान हो या शादी–विवाह सभी कार्यों में भरारे व मुखिया की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। होली के उत्सव का प्रारम्भ भी भरारे के मन्त्रोच्चारण व मुखिया की उपस्थिति में होता है। थारू होली दो रूपों में मनायी जाती है।:–

1. **जिन्दी होली**: सर्व प्रथम पधान कुटवार को बुलाकर यह सूचना गांव के सभी लोगों को कुटवार के माध्यम से देता है कि पूर्णमासी को होली रखी जायेगा और सभी लोग उपस्थिति होवें। पधान की सूचना का अनुपालन करते हुए प्रत्येक घर से एक–एक सदस्य पधान द्वारा बताये गये नियत स्थान (गांव की सीमा में) पर एक जोड़ा लौंग का फूल तथा गोबर के 5 या 8 कंडे लेकर पहुचते हैं। गोबर के कंडों को गोलाकार रूप में रखा जाता है उसके बाद उसके ऊपर धास–फूस डाली जाती है। तत्पश्चात भरारा उसमें होलिका माता की स्थापना मन्त्रोच्चार के साथ करता है और कहता है कि गांव के सभी लोगों के दःख, तकलीफ, दुःख–दरिद्रता सभी यह तेरे स्थान पर रखी गयी हैं, हे होलिका माता इसे संभाले रखना सभी गांव के लोगों को निरोग,

सुख–समृद्वि व शान्ति, प्रेम भाई–चारे के साथ रहें, ऐसी उनकी मनःस्थिति देना।

भरारे के पूजाःअर्चना के प्श्चात सभी उपस्थित जन एक–आध घंटा वहां पर होली के गीत गाते हैं होली खेलते हैं । फिर चले जाते हैं।

पूर्णमासी के दस दिन पश्चात घर–घर जाकर होली खेली जाती है। इस प्रकार होली खेलने का कम छलड़ी तक चलता रहता है। जिस दिन होलिका का दहन होता है उससे पूर्व भी पधान कुटवार के माध्यम से सभी गांव के लोगों को सूचना भिजवाता है कि होलिका का दहन किस समय होगा। सभी लोग होलिका दहन के दिन कुछ चावल व एक जोड़ा लौंग का फूल लेकर होलिका दहन स्थल पर आकर होलिका में लायी गयी चावल तथा लौंग के फूल को अर्पित करते हैं। भरारा दहन के मंत्र पढ़ता है तथा पधान के द्वारा होलिका को अग्नि प्रदान की जाती है। इसके पश्चात अन्य लोगों के द्वारा अनुसरण किया जाता है। गीत गाया जाता हैः–

" आज होरी हिय्यां से गयी बलम के देश । "
"आज होरी हिय्यां से गयी बलम के देश ।"
" आज होरी हिय्यां से गयी बलम के देश।"

होलिका दहन के ही दिन पधान समस्त उपस्थितनों को कहता है कि खखणेरा (मिट्टी के गोल आकार) बना देना, जिन्हें चार सीकों में प्रत्येक सींक में 5 या 7 खखणेंणा डाला जाता है। दहन वाली रात में सुबह होने से पूर्व 4 बजे प्रातः सभी लोग उन "खखणेणों" को लेकर जाते है, गांव की अन्तिम सरहद में ले जाकर सभी खखणेणों को इकट्ठा कर उन्हें दफन कर दिया जाता है। उसके ऊपर पत्थर लकड़ी रख दी जाती है। तत्प्श्चात पधान वहां से भागने को कहता है तो सभी उस स्थल से भाग पड़ते हैं, पीछे मुड़ कर नहीं देखते। थारू जनजाति के लोगों की ऐसी मान्यता है कि पीछे देखने पर होलिका का शैतान साथ में आ जाता है और घर परिवार में अनिष्ट करता है।

अगले दिन छलड़ी मनाई जाती है, पकवान बनाये जाते हैं आपस में गले मिलते हैं, होली की बधाई आपस में देते है। मुखिया के घर पर सभी आकर होली के मंगल गीत गाते हैं। इस तरह यही कम फागुन की अमावस्या तक चलता रहता है और अमावस्या को पधान के द्वारा होली के समापन की घोषणा की जाती है। सभी लोग आपस में गले मिलते हैं । घर–घर जाकर बड़ों के पैर छूते हैं तथा अपने उम्र के लोगों को गले मिलते हैं इस तरह इस उत्सव का समापन होता है। इस प्रकार जिन्दी होली उजाला पक्ष फागुन मास की पूर्णमासी से होलिका दहन के साथ ही समाप्त हो जाता है। थरूवाटी होली की एक विशेषता यह है कि इसमें रंगों का प्रयोग ना के बराबर होता है।

2. मरी होली: मरी होली या मुर्दा होली या अनेरी होली का प्रारम्भ होलिका दहन के बाद होता है। इसको मनाये जाने का प्रमुख कारण यह माना जाता है कि होलिका दहन के साथ पाप की पराजय व सत्य की विजय के फलस्वरूप भक्त प्रहलादअग्नि चिता में भी नहीं जलता, जबकि अग्नि में न जलने का वरदान प्राप्त होलिका जल जाती है। मुर्दा होली को थरूवाट में बड़े हर्षोल्लास व नाच गानों के साथ मनाया जाता है। मरी होली, मुर्दा होली सभी थारू गांवों में नहीं मनाई जाती है, कुछ एक गांव में ही थारू समाज मुर्दा होली मनाते हैं। इस सम्बंध में बुजुर्गों द्वारा बताया जाता है कि जिन्दा होली मनाने में गांव में बुरा हुआ इस कारण उस गांव के थारू समाज ने जिन्दी होली मनाना बन्द कर दिया।

चराई उत्सव–

होली त्यौहार की समाप्ति "चराई" उत्सव से होती है। "बड़ी चराइ" का मुहूर्त भरारा निकालता है। यह अप्रैल मास के पहले या दूसरे सप्ताह के सोमवार या गुरुवार को मनाया जाता है। उसके एक दिन पहले सारा गांव समीपस्थ नदी में सामूहिक तौर पर मछली मारने जाता है। उसमें नर–नारी और बच्चे सभी भाग लेते हैं। "बड़ी चतुराई" समारोह के शुरु में भरारा ग्राम देवी भूमसेन को घी–गुड़ लौंग चढ़ाता है। तदुपरांन्त महिलायें सामूहिक भोजन तैयार करती हैं उनके पकवानों में मछली के साथ ही मीठे चावल,पूरियां तथा उपलब्धता के अनुसार दूसरे खाद्य होते हैं। खाद्य सामग्री को लेकर गांव की सभी महिलायें "पधानियां" (मुखिया की पत्नी) के साथ बगीचे में चली जाती हैं। तदुपरांत भरारा "पंडित", मुखिया और गांव के कुछ और पुरुष वहां पहुंच जाते हैं। भरारा देवी भवानी की वन्दना करता है, जिसकी समाप्ति पर महिलायें उसको अपना विशेष अतिथि मानते हुए उसको पकवान प्रस्तुत करती हैं। भरारा "पंडित" मंत्रोच्चार के साथ उनके स्वास्थ्य और खुशहाली के लिए प्रार्थना करता है।

तदानन्तर सभी विशेष भोजन करने बाग और आम के पेड़ के नीचे जमा होते हैं। भोजन कर चुकने के बाद होली की ठिठोलियों का दौर आता है, जिसकी शुरुआत "पधानियां" करती हैं। वे सभी भद्दे मजाक करने लगती हैं, जिसका लक्ष्य भरारा, पधान और उनके साथी पुरुष होते हैं। चूंकि वे संख्या में महिलाओं से काफी कम होते हैं, अतः खिसिया कर रह जाते हैं तथा वहां से भाग खड़े होते हैं। रास्ते में उन्हें जो भी मिलता है, उसके ऊपर वे छलेरी होली का रंग –बिरंगा पानी डालते जाते हैं,। इधर बाग में महिलायें ढोल–ढोलकियों के साथ भद्दे गीत गाती जाती हैं। उनमें से वे परस्पर मजाक करती हैं तथा भद्दे किस्म के किस्से–कहानियों का बखान करती जाती हैं। सूर्यास्त के साथ होली का वह फूहड़ मजाक समाप्त हो जाता है। "बडी चराई" के एक पखवाड़े के बाद "छोटी चराई" मनाई जाती है। इस दिन प्रातःकाल गांव के सारे देवी–देवताओं तथा भूमिसेन का पूजन किया जाता है। महिलायें अपने घरों में मछली तथा दूसरे पकवान तैयार करती हैं । उन्हें लेकर वे उद्यान में इकट्ठा हो जाती हैं। इस विशेष भोजन को खा चुकने के बाद वे घण्टों तक सामूहिक गाना–बजाना करती हैं। इन गीतों में प्रेम–प्रसंगो तथा पति–पत्नी के विरह की प्रधानता होती है। वहुधा एक महिला गीत की शुरुआत करती है, जिसका शेष महिलायें अनुसरण करती जाती हैं। इस तरह थारुओं के चराई उत्सव की समाप्ति के साथ ही होली त्यौहार की भी समाप्ति होती है।

आषाढ़ी– जैसाकि इस त्यौहार क नाम से ही स्पष्ट है कि यह त्यौहार आषाढ (जून–जुलाई) के माह में मनाया जाता है। इस त्यौहार के जरिये थारु अपने

देवी–देवताओं से गांव की बिमारियों तथा प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा की विनय करते हैं। इसको व्यक्तिगत् और सामूहिक तौर से इस देवपूजन की सामग्री सारे गांव से इकट्ठा करने के बाद ही यह कार्य किया जाता है। गांव के लोग भरारा के साथ देवी भूमसेन के मन्दिर पर इकट्ठा होते हैं। भरारा मंत्रोच्चार के साथ भूमसेन तथा दूसरी देवियों की पूजा करता है। पूजा के दौरान अग्नि में घी–गुड़ की आहुति दी जाती है। तदुनरान्त सभी देवियों को प्रसन्न करने के लिए बकरे या मुर्गे की बलि दी जाती है। उसके बाद पूजन का प्रसाद सारे गांव में वितरित किया जाता है।

व्यक्तिगत पूजा में भी पुजारी, भरारा ही होता है। लेकिन उसके साथ गृहपति (वह घर जिसमें पूजा की जा रही हो) पूजा सम्पन्न होने तक उपवास रखता है। इसके अलावा देवी–दुर्गा की प्रसन्नता की खातिर उस परिवार के आंगन में लाल पताका फहराई जाती है। देवियों के साथ ही पूर्वजों तथा गौशाला के देवता की भी पूजा की जाती है।

नयी फसल हेतु पूजा (औंथ)–

यह त्यौहार आश्विन(सितम्बर –अक्टूबर) माह में जब धान की फसल पक कर तैयार हो जाती है और बहुधा किसान तब तक नई फसल काट भी चुके होते हैं, तब थारु लोग मनाते हैं। इस त्यौहार में थारु अपने पूर्वजों और कुलदेव के प्रति कृतज्ञता के रुप में इस त्यौहार को मनाते हैं। फसल के भरपूर पक कर तैयार हो जाने को वे अपने पितरों और कुल देव का आर्शीवाद मानते हैं। वैसे इस मौके पर कोई विशेष पूजा नहीं की जाती है। केवल महिलायें नये अन्न के विभिन्न पकवान तथा मिठाईयां तैयार कर प्रथम अपने पितरों व देवी–देवताओं को चढ़ाती हैं और शेष को उनका प्रसाद मान कर अपने परिवार के सदस्यों को वितरित कर देती हैं। पूजा का जो प्रसाद बनाया जाता है, उस अनाज को शुक्रवार के दिन काट कर घर लाकर देवता के मन्दिर में रख देते हैं।

तीज –

सावन की उज्यारी (शुक्ल पक्ष) की तीसरी तिथि को तीज मनाई जाती है। इसको मनाने के लिए लोग अपनी बहिन, लड़कियों को घर बुलाकर लाते हैं। तीज से पहले बाजार में जाकर लड़कियां काजल, बिन्दी आदि खरीद कर ले आती हैं। तीज के दिन सभी के घरों में मीठी पूड़ी, पुआ, सिवईं पकाई जाती हैं। गांव की सभी लडकियां, गांव के पास, तालाब या नाले में जाकर कॉश में गांठ बांधती हैं और वहीं पेड़ की छाया में बैठकर गीत गाती हैं, ढोल बजाती हैं। उनके लिए खाना

पूरे गांव से जाता है, और सभी मिलजुल कर खाती हैं। शाम होने पर सभी वालायें अपने–अपने घरों को लौट आती हैं।

मेले –

मेले का नाम सुनते ही मन रंग–बिरंगी कल्पनाओं से भर कर झूम उठता है। उसका नाम लेते ही आंखों के सामने एक बड़ा ही भव्य, किन्तु इन्द्र– धनुषी दृष्य सामने आ जाता है– मेलों में आती जाती बैलगाड़ियां, साईकिलों की लम्बी कतारें, बैलों के गले में बधें पट्टे में सजे घुंधरुओं की रुनझुन, फूलों से सजी विविध दुकानें, तरह–तरह की रंग–बिरंगे खिलौनों की दुकानें, रोमांचक जादू का प्रदर्शन, सर्कस, के करिश्में , सपेरें और बहुरुपियें का कला–प्रदर्शन, मदारियों द्वारा प्रदर्शित बन्दर और भालू के अनोखे करतब, कठपुतली और नौटंकी के खेल –तमाशे तरह तरह के ऊंवे–नीवे और घुमावदार झूलों में झूलते बच्चे तथा जवान, तरह –तरह की खाने–पीने की वस्तुओं की दुकानें, रंग–बिरंगी पोशाकों में सजे बच्चे–बच्चियां, युवा–युवतियों के समूह, किलकारी मारते बच्चों के झुण्ड वास्तव में मेला हम भारतीयों में चाहे वे किसी भी अंचल के हों, किसी भी धर्म के मानने वाले हों, अजीब सी उत्तेजना मात्र से ही हमारे मन में गुद–गुदी पैदा होने लगती है।

मेला का शब्दिक अर्थ है मेल–मिलाप और सांस्कृतिक आदांन–प्रदान का स्थल। मेले का अर्थ है संकीर्ण भेदभाव से ऊपर उठ कर एक जगह मिलना। यह नियत तिथि और नियत स्थल पर लोगों का होने वाला जमाव है। यह अपूर्व आनन्द और उल्लास देने वाला एक ऐसा स्थान जहां सैर–सपाटे, मनोरंजन आदि के लिए विभिन्न संस्कृति और सभ्यता के लोगों का जमाव होता है।
हमारे देश में आमतौर पर मेले से धार्मिक भावना है। जहां–जहां धार्मिक उत्सव होता है, मेला अपने आप लग जाता है। जहां तक तराई के थारु जनजाति के लोगों के मेले का प्रश्न है, थारु जनजाति के लोग गंगास्नान को बड़ा महत्व देते हैं। गंगा स्नान का मेला कार्तिक पूर्णमासी को लगता है। यह मेला खटीमा क्षेत्र में मेलाघाट में लगता है। मेलाघाट(शारदा नदी के किनारे) तथा सितारगंज क्षेत्र में वीकाघाट में लगता है। मेलाघाट में यह मेला दो दिन तथा वीकाघाट में पन्द्रह दिन तक चलता है। मेले में सभी थारु स्त्री–पुरुष जवान, बूढे सभी गंगा स्नान के लिए बैलगाड़ियों, ट्रैक्टरों, साईकलों में सवार होकर जाते हैं। कुछ थारु लोग जिन का भला हुआ रहता है या मनौती किए होते हैं, कि बच्चे स्वस्थ रहें तथा घर में खुशी रही तो गंगा स्नान के दिन गंगा तट पर कथा करेंगे, मनोकामना पूर्ण हो जाने पर गंगा स्नान से पहले दिन अपने परिवार वालों तथा मित्रगणों के साथ रात्रि में वहीं गंगा के किनारे पण्डित द्वारा कथा की जाती है, रात भर ईश्वर भजन–कीर्तन भी होते हैं। अगले दिन गंगा स्नान करके मेले का आनन्द लेते हुए घर लौट आते हैं।

इस तरह जितने दिन भी मेला चलता है, फूलों से सजी विविध दुकानें, तरह–तरह की रंग–बिरंगी खिलौनों की दुकानें, रोमांचक जादू का प्रदर्शन, सर्कस के करिश्में, सपेरों और मदारियों का प्रदर्शन, झूलों में झूलते बच्चे तथा जवान, रंग–बिरंगी पोशाकों में सजे बच्चे बच्चियों, युवा–युवतियों के समूह, किलकारी मारते बच्चों के समूह मेले की शोभा में चार चांद लगा देते हैं।

थारु जनमानस शिवरात्रि को भी बड़ा महत्व देते हैं। इस दिन व्रत रखा जाता है और ये लोग इस दिन शिवालयों में जाकर शिवलिंग में जल चढ़ाते हैं। शिव को "बूढे बाबा" कहते हैं। प्रारम्भ में खटीमा क्षेत्र चकरपुर में तथा सितारगंज क्षेत्र में शक्तिफार्म के पास झाड़ी में ही शिवालय थे। इसलिए इन क्षेत्रों के थारुजन इन शिवालयों में ही जल चढ़ाने आते थे और इस तरह मेले का रुप इस पर्व ने ले लिया। वर्तमान में हर गांव में शिवालय बन चुके हैं। लोग गांव के मन्दिरों में ही जल चढ़ाते हैं । मेला देखने ही मात्र जाते हैं । शिवरात्रि को थारु लोग रात्रि में भी भोजन पका हुआ नहीं करते केवल फलाहार ही करते हैं।

लोकगीतः–

थारु जनजाति अपने उत्साही और उन्मुक्त जीवन के साथ अपने लोकगीतों के लिए भी प्रसिद्व हैं । प्राकृतिक वातावरण ने उसे लोक नायक ही बना दिया। प्रत्येक थारु, मर्द तथा बच्चा अच्छा गीतकार होता है। इस तरह यह समाज ही रंगीला है।

देवताओं की पूजा हो, या भूत–प्रेत की बलि अथवा बच्चे के जन्म की खुशी हो या किसी को व्यंग्य करना या उपदेश देना हो, संस्कार सम्बंधी या रीति–रिवाज सम्बंधी गीत थारुओं की अपनी बोली में हैं। कुछ विशिष्ट प्रकार के लोकगीतों की श्रेणियां निम्न प्रकार से हैं–
संस्कार सम्बंधी गीत, शुभगीत कोई भी (शुभ कार्य) हो यह गीत प्रमुख स्थान रखता है। संस्कार गीतों में प्राकृतिक धन–धान्य की विशेष रुप से चर्चा की गयी है।

1. शिशु के जन्म के समय का गीत–

थारु जनजाति समाज में जब नवजात शिशु जन्म लेता है तो लगभग उसी सायं खुशी के गीत गाने शुरु हो जाते हैं। कहीं–कहीं ये गीत सटी (छठी) के अवसर पर गाये जाते हैं। इन गीतों को थारु जनजाति के लोग जलमौती या जन्ममौती अर्थात जन्म के समय के गीत कहते हैं जो निम्न प्रकार गाये जाते हैं:

" जन्म लियौ रे जादों राय, कान्हा मुरली घर आये।
कान्हा मथुरा जन्म् लियौ, हर गोकुल में धाये।।"

2. विवाह की हल्दी के समय का गीतः–

थारु समाज में शादी के समय जब दूल्हा या दुल्हन को हल्दी लगाई जाती है तो उस समय निम्नलिखित गीत गाये जाते हैंः–

"परवत खसियारे हर जोते, जुते रे परसा को खेत
ते हरदी सुहाये, कौन दिशा की हरदी है,कौन"।

3. चौहट्टी गीत (बारात के चौराहे पर गाया जाने वाला गीत)

थारु समाज में जब दुल्हा, दुल्हन के घर से दुल्हन को विदा कराके लाता है तो दुल्हनिया के धर के सबसे नजदीक वाले चौराहे पर जो गीत गाया जाता है, उसमें पूर्णरुप से राजपुताने के समय की झलक मिलती है क्योंकि उस समय बिना युद्व के शादी–विवाह नहीं होते थे। बारात के चौहट्टी में पहुंचने पर निम्नलिखित गीत गाया जाता हैः–

"सजी वरायत रण खेतन में ठाडी
सजी पालकी चौ दण्डी और म्याना
जो जीते सो लै जाये रामा"

4.भुइंया पूजन के समय का गीतः–

बारात जाने के एक दिन पहले शाम के समय घर की सबसे बड़ी औरत जिसका पति जिन्दा हो, नये कपड़े पहन कर अन्य औरतों तथा बच्चों के साथ पूजा का सामान जैसे – पूड़ी, कचौडी शरबत, पानी, मिगनी––टिंगनी तथा कण्डे की आग लेकर यह गीत गाते जाती हैंः–

भुवन बनो है, मैय्या तेरो ऊंचो नीचो
तेरे भुवन में मैय्या पीपर सोहे, लाल ध्वजा फहराये
तेरे भुवन में मैय्या क्या –क्या वढ़त है, कोह की करे

अरघान

तेरे भुवन में मैय्या होम होत है,लौंगन करै–अरधान
सिंग चढ़े कराजत आवें, लंगूरा–भय है सवार
भुवन बनो है, मैय्या तेरो ऊंचो नीचो।

5..देव स्तुति गीत–

देव स्तुति गीत में देवता की स्तुति, प्रार्थना, शुभकामनाऐं देने तथा वरदान मांगने के लिए देवता से प्रार्थना थारू लोग गद्य के रूप में प्रयुक्त करते हैं। इसमें तुकबन्दी मिलाने का प्रयत्न किया जाता है, जैसे–

"सुमरन करैरी मैय्या भगवती, तुम्हरो आसने में हो सहाय।
उठन बिछुआ दाखिनी वीर करलेव सोलह श्रृंगार ,
सुमरन करैरी मैय्या भगवती, तुम्हारो असने में हो सहाय
सतजुग में मैय्या सत्य भये त्रेता में लै अवतार
सुमरन करैरी मैय्या भगवती, तुम्हारो असने में हो सहाय।"

6.झूला गीत–

सावन माह लगते ही आम के बगीचों में गांव के लोग एक मोटी रस्सी बनाकर झूला डाल देते हैं। झूले में नयी–नयी बहुओं को झुलाया जाता है तथा गीत गाते हैं:–

"वायु चलै पूर्वायी, सबे बन डोल रहो,
डार पे बैठो बन्दर भैय्या, ठूस,मुस रोय रहो,
तू का रोय बदर भैय्या, तेरो जिया डर हौ मार,
खाल काढ़ भुस भरिहौ, तो मदरो मड़े हौरे,
वायु चलै पूर्वायी सबे बन डोल रहो।
कौन से मोड़ी मदारी तो कौन गवेया रे।
कौन से नाच नचरिया तो कौन दिखइया रे।
वायु चलौ पुर्वायी सवहवैवन डोल रहो
जैठे से मोड़ी, मदारी, तो मझले गवैया रे
लौहरे से नाच नचनियां तो सजले दिखाइयारे ।
वायुचलौ पूर्वायी, सबे बन डोल रहो।"

7.प्रेमगीत (विरहगीत)–

"झुकत न देखै पारधी, चलत न देखे बान
मैं तोय पूंछू ऐ सखी, रो किस गुन तल दै प्रान

जल थोरे नेहा घने, लगे प्रीत के बान
तू पी–तू पी कर मरे, सो इस गुन तज दियो प्रान"।

8.संन्ध्याकालीन गीतः–

शाम होते ही दिया जलाना अनिवार्य होता है। जिस घर में कोई आदमी मर जाता है अन्यथा प्रत्येक धर में शाम होते ही दिया जला दिया जाता है और गीत गाते हैं:–

दिया ना धरौरे, पजार सखी संजा भई है।
काहे को दिया ना काहे की करौं बाती
काहे को तेल हो, जरे सारी राती
दियाना धरौ रे पजार सखी संजा भई है
माती की दियाना रूई करौ बातीं
सरसों कै तेल जरै सारी राती
दिया ना धरौ रे पजार सखी संजा भई है।

9.लोरी (बालगीत)

थारू महिलायें अपने बच्चों को सुलाते समय प्रेमगीत कहानी के माध्यम से सुलाने के लिए निम्नलिखित गीत गाती हैं:–

"सेबेरे जागे मेरी राजमलहनियां
तेरी फुल बगियारे, भौंरा उमड़ रहो
पनिया भरन गई, संग लगौ रे भौरा
घुंघटा के ओट रे मोरौ रमड़ रहो भरौ
सेवेरे जागे मेरी राजमहलनियां"।

मनोरंजन के अन्य साधनः–

लोकगीत एवं लोकनृत्यों के अलावा मनोरंजन के थारू जनजाति के लोगों के परम्परागत खेल भी हैं, जिनमें इनकी संस्कृति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इनमें (बाघ–बकरी) बग्घा–बग्घी लुका–छिपी, हन्ना, झींझी स्वांग आदि थारू जनजाति के मनोरंजन के अन्य मुख्य साधन हैं:–

झींं–झींं

थारू समुदाय का एक ऐसा त्यौहार है जिसे इस समाज की लड़कियों द्वारा क्वार–भादों के महीने में मनाया जाता है। कुटवार गांव में लड़कियों (महिलाओं) को झींं–झींं खेलने को बुलावा देता है। खेल की शुरूआत पधान (मुखिया) के घर से की जाती है। इस खेल में घड़े(हंडिया)की झींं–झींं बनाई जाती है। जिसमें बराबर दूरी पर अनगिनत छिद्र करके उसके अन्दर एक दीपक को प्रज्जवलित रखा जाता है। झींं–झींं को एक लड़की सिर पर रखकर मटकती रहती है। और प्रत्येक धर में झींं–झींं को लेकर लड़कियां जाती हैं । नृत्य के समय झींं–झींं के लिए बीच में रहती हैं और अन्य उसके चारों ओर मटकते हुए निम्न गीत गाती हैं:–

नगरा की त्रिया,नियारे रे भई।
जगो बसी टेडा घाट।।
टेडा घाट में छैल चिकनिया त्रिया कैडारी विगाड़।

इस तरह इस गीत को गाते हए मस्ती में झूमती रहती हैं। जिस–जिस घर में ये झींं–झींं लेकर जाती है लोग इन्हें मक्का व चावल देते हैं। यह खेल इस तरह एक पखवाड़े (15–20 दिन) तक खेला जाता है। अन्तिम दिन सभी लोग झींं–झींं को लेकर नदी पर जाते हैं, वहां भी नदी तट पर खेल कर झींं–झींं को रख कर उसमें दिया जला कर उसकी पूजा कर नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है। जो मक्का व चावल गांव से झींं–झींं खेलने वाली लड़कियों को प्राप्त हुआ होता है

उसको पीस कर उसका ढ़िस्सा–फरा (लम्बे सेम नुमा) प्रसाद बनाकर पूरे गांव में वितरित किया जाता है। उस दिन सांयकाल प्रत्येक घर में तरह–तरह के पकवान बनाये जाते हैं । लेकिन वर्तमान में इस खेल की परिपाटी विलुप्त हो गयी है। इस त्यौहार खेल के पीछे की मान्यता कृषि से सम्बन्धित है। क्वार व भादों में मक्के की फसल पक जाती थी तथा अगेती वाली धान की फसल भी हो गयी होती है तथा पीछे बोई गयी धान की फसल खेत पकने वाली होती है, तराई में मक्का उस समय बहुत बोया जाता था व फसल भी अच्छी होती थी । अतः खुशीवश व नयी फसल को ईश्वर को समर्पण कर भोग लगाने तथा आपस में मिल जुल कर नये अन्न को चखने खाने की अनूठी यह परम्परा थी जो आपस में मिल–जुल कर शान्ति एवं आनन्द के साथ थारू बालाओं द्वारा झीं–झीं के खेल के रूप में खेला जाता था लेकिन वर्तमान में यह परिपाटी लगभग खत्म हो गयी है, वर्तमान पीढ़ी तो इससे अनभिज्ञ ही है।

हन्नाः–

हन्ना भी थारू जन–जातीय समाज का एक ऐसा नृत्य त्यौहार है जिसे प्रायः गांव के लड़कों के द्वारा खेला जाता था। यह नृत्य भी क्वार– भादों के महिनों में खेला जाता है। गांव का कुटवार गांव में धर–घर जाकर पुरूषों लड़कों को हन्ना खेलने के लिए पधान के धर पर आमंत्रित करता है। खेल का प्रारम्भ पधान के धर में किया जाता है। इस खेल में बच्चे दो टोलियों में बंटकर एक–एक लाइन करके निम्न गीत गाते हैंः–

नरई की नन्दा, ननसारी को उडरा।
खेलने गयो कन्जाबाग।।
खेल–खाल नद लौट पड़े हैं।
खखरा उपठत जाये।।
एक झुड़ा झपटी,दुसरो झूढ़ा रे झपटी।
तिसरे में हुई गयो पार।।

बीच में हीरन बना हुआ बच्चा हाथ से घण्टी बजाता रहता है और आगे पीछे चल कर हन्ना–मक्के के छिल्के व दो साखाओं वाले लकड़ी के डण्डे तैयार कर हाथ व गले में बांध हन्ना पकड़ा बच्चा आगे पीछे चल कर कूदता है। इस तरह गा–गा कर बच्चे गांव के प्रत्येक घर में खेलते हुए जाते है। हन्ना खेलने वालों को प्रत्येक घर से मक्का और चावल दान दिया जाता है। यह खेल इस तरह एक पखवाड़े (15से 20 दिन) तक खेला जाता है। गांव के सब घर में हन्ना खेलने के पश्चात हन्ना के डण्डे को नदी में ले जाया जाता है , उसकी पूजा कर उसको भी झीं–झीं की तरह ही प्रवाहित कर दिया जाता है। और हन्ना खेलने में गावं भर से प्राप्त मक्का व चावल को पीस कर उसका आटा बनाया जाता है उसका (डिस्सा–फरा)

बना कर प्रसाद के रूप में पूरे गांव में वितरित किया जाता है। सायं काल प्रत्येक घर में तरह–तरह के पकवान बनाये जाते हैं। इस त्यौहार के मनाने के पीछे भी झीं–झीं की ही मान्यता है। इस तरह यह त्यौहार भी आपस में प्रेम भाव मेल–जोल खुशी को प्रकट करने का एक अनोखा खेल है, जिसमें वह कुछ समय के लिए अपने समस्त दुखों,दर्दों तकलीफों को भूल कर खेल, नृत्य व गीत में आनन्दित हो जाता था। वर्तमान में हन्ना खेलने की परम्परा विलुप्त सी हो गयी है।

स्वांग–यह खेल थारू समाज में हंसी मजाक से भरपूर होता है। इस खेल में व्यंग्य छींटाकसी ठीक उसी तरह होती है जिस तरह पहाड़ियों के (हील जातरा) में किया जाता है।

थारू जनजाति की धर्मिक स्थिति

टायलर प्रथम मानवशास्त्री थे, जिन्होंने आदिम धर्म के बारे में सिद्वान्त देने

का प्रयत्न किया। इनका यह सिद्वान्त आत्मवाद या जीववाद के नाम से जाना जाने लगा। थारू जनजाति में धर्म किसी न किसी प्रकार की अतिमानवीय लौकिक या समाजोपरि शक्ति पर विश्वास है जिसका आधार भय, श्रद्वा, भक्ति और पवित्रता की धारण है और जिसकी अभिव्यक्ति प्रार्थना, पूजा या अराधना है। धर्म अलौकिक शक्ति में विश्वास पर आधारित है जिसमें आत्मवाद और मानववाद दोनों सम्मलित है। दुर्खीम के अनुसार, "जनजाति धर्म विश्वास तथा संस्कारों का संकलन है, जिसमें संस्कार परिस्थिति के अनुसार, गत्यात्मक प्रकृति के लिए होते हैं।" जहां तक थारू जनजाति में धार्मिक स्थिति का प्रश्न है ,नयी सभ्यता की रोशनी और पर्वतीय लोगों के सम्पर्क में आने के फलस्वरूप थारू आदिवासी अब लगभग पूर्णतया हिदू हैं और हिन्दू धर्म के रीति–रिवाजों का पालन करते हैं। इसके बावजूद आदिवासी सभ्यता व धर्म के प्रति उनकी आस्था के कुछ प्रमाण अभी भी मिलते हैं।

उदाहरणार्थ– प्रेतों पर उनके विश्वास को ही लिया जाए तो वे मानते हैं कि प्रेत भले और बुरे दोनों किस्म के होते हैं। मनुष्य के हित के लिए प्रेतों की पूजा/अर्चना जरूरी समझते हैं, जिसे खुश होकर वे उनका और भी अधिक मंगल करते हैं।

"पछौवा" एक ऐसा ही प्रेत है। दूसरी ओर मनुष्य के लिए नुकसानदेह प्रेतों के कोध से बचने के प्रयास भी किये जाने चाहिए। इसके लिए वे मंत्र–तंत्र के द्वारा या तो उन्हें निष्प्रभावी बना देते हैं अथवा अपने धरों में उनकी स्थापना करके उनके कोध से बचने का प्रयास करते हैं। "खरगा" भूत ऐसे किस्म के दुष्ट प्रेतों में से एक है।

थारू लोग जंगल के प्रेतों में भी विश्वास करते हैं। वनस्पति प्रेत गांव के जंगल में निवास करता है। जंगल के बीच में घास–फूंस और शाखाओं की ढेरी इस प्रेत का प्रतीक होती है। इस ढेर से गुजरते हुए अपनी श्रद्वा के तौर पर उस ढेर में एक टहनी मिला देना थारू अपना कर्तव्य मानता है। घर के जानवरों की बरकत के लिए थारू लोग कल्लू बर्दिया /विर्तिया को पूजते हैं, यह भी एक जानवरों का ग्वाला था जो जंगल में हाथियों के झुंड के द्वारा मारा गया और फिर पूजा जाने लगा। इसे प्रसन्न करने के लिए बकरे, मुर्गे आदि की बली भी दी जाती है।

"अरिमल " या "भारामल" प्रेत भी जंगल में निवास करते हैं इनका प्रतीक पत्थरों का ढेर होता है जो बहुधा वनस्पति के ढ़ेर के समीप ही स्थित होता है, इस ढ़ेर से गुजरते हुए उसमें अपनी ओर से एक छोटा पत्थर जोड़ना जरूरी समझा जाता है। जंगल में जानवर खो जाये तो इस प्रेत से विनती की जाती है। जानवरों के मिल जाने पर सवा रूपये का प्रसाद चढ़ाना अत्यंत आवश्यक होता है। इस प्रेत की शक्ति में थारूओं का अटूट विश्वास है । उनकी मान्यता है कि यदि नियत अवधि के अन्दर चढ़ावा न दिया जाये तो कसूरवार को जबरदस्त नुकसान उठाना पड़ता है।
थारूओं की धारणा है कि पूर्वज भी प्रेत बन जाते हैं उन्हें वे 'बुड्ढे बाबू' या निराधार कहते हैं। थारूओं में इन प्रेतों के प्रति बड़ी श्रद्वा भावना होती है। वे उनके प्रतीक की अपने घरों में स्थापना कर के पवित्र अवसरों पर उनकी पूजा करते हैं । उनकी आस्था है कि पूर्वज प्रेत कभी परिवार के बच्चों पर आ जाते हैं । ऐसी दशा में बच्चा सारे समय रोता ही रहता है, ऐसे मौकों पर माताऐं प्रेत को चावल का प्रसाद चढ़ाती हैं, जिससे बच्चा रोना बन्द कर देता है।
जानवर प्रेतों को "कारोदेव " और "रकाट"कलुवा नाम से जाना जाता है। थारूओं की मान्यता है कि ये प्रेत पशुओं की बीमारियों तथा हिंसक जानवरों से रक्षा करते हैं।
तराई में सधन वन होने के कारण बाघों का भी बाहुल्य था। थारू वनों में रहते तथा विचरण करते थे तो कभी कभार बाघ का शिकार भी बन जाते थे। थारूओं को विश्वास है कि ऐसे व्यक्तिप्रेत बन जाते हैं जिनको वे "बाघा भूत" कहते हैं।
मृत आत्माओं को प्रेत देवता के रूप में पूजने के आलावा थारू लोगों ने हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख धर्म के देवी देवता तथा सन्तों व पीरों को भी पूज्य समझकर उनको भी पूजने लगे हैं।

थारू जनजाति ग्राम देवी भूमसेन नाम से जानती है। हर थारू ग्राम के बाहन पूर्व दिशा में पीपल या नीम के पेड़ के नीचे मिट्टी के ऊँचे टीले पर ग्राम के सभी देवियों की स्थापना की जाती है। भूमसेन की सभी ग्राम के देवी–देवताओं तथा प्रेतों का स्वामी माना जाता है। भूमसेन के इर्द–गिर्द सात देवियों–देवताओं तथा प्रेतों का स्वामी माना जाता है। भूमसेन के इर्द–गिर्द सात देवियों दुर्गा, कालिका, शीलता, जवाला, पार्वती, हुल्का और पूर्णा देवी की स्थापना भी मिट्टी के टीलों पर होती है।

लेकिन इनकी ऊँचाई ग्राम देवी के टीलों से कम होती है। थारूओं में प्रचलित पांच प्रकार के देवता मिलते हैः– पहले प्रकार के वे पूर्वज जो प्रेत हो गये हैं। दूसरे ग्रामीण देवता, तीसरे पहाड़ी (पहाड़ों में स्थित देवता) के देवता ,चौथे जंगल में रहने वाले देवता तथा पांचवे ऐसे देवता जो मैदानी भागों से आये पड़ोसियों द्वारा पूजे जाने वाले समस्त देवी देवता हैं।

वर्तमान में सम्पूर्ण थारू समुदाय धार्मिक वैचारिकी के आधार पर दो प्रमुख समूहों में विभक्त हैं। एक तो वह थारू समूह जो परम्परागत हिन्दू धर्मावलम्बी होने का दावा करता है दूसरा वह समूह जो अपने को राधास्वामी पंथ से सम्बन्धित करता है। यह समूहगत भिन्नता खान, पान, रहन,सहन, जीवन–मूल्यों व व्यवहार प्रतिमान के रूप में स्पष्टतया अभिव्यक्त होती है । राधास्वामी पंथाबलम्बी थारू जनमांस मदिरा केसेवनको निषिद्व मानते हैं और इसलिए दैनिक जीवन एवं उत्सव, त्यौहारों के अवसर पर भी मांस, मदिरा के प्रयोग एवं उपभोग से सदैव परहेज रखते हैं। यहां तक कि ये लोग विभन्न उत्सवों, त्यौहारोंव विविह एवं मुत्यु आदि अवसरों पर अनावश्यक व्यय एवं दिखावा करने में भी विश्वास नहीं करते हैं।
भारत में निवास करने वाली जनजातियां आज परिवर्तन के दौर से गुजर रही हैं। इस तराई क्षेत्र में निवास करने वाली थारू जनजाति भी उससे अछूती नहीं है। पूर्वोत्तर में ईसाई मिशनरियों के द्वारा विभिन्न प्रलोभनों के द्वारा ईसाई बनाया जा चुका है। मिशनरियों का ध्यान अब तराई में निवास करने वाली थारू जनजाति पर केन्द्रित है। मिशनरियों के प्रभाव तथा इसके तरह–तरह के प्रलोभनों से कुछ थारू लोग ईसाई धर्म को भी स्वीकार कर चुके हैं लेकिन राणा थारू परिरूद के प्रयत्नों से थारूओं के धर्म परिवर्तन में रोक लगी है और ईसाई बनेथारू पुनः अपने धर्म को स्वीकार करने लगे हैं।

रूढ़ियांः– खेती थारू जनजाति का मुख्य व्यवसाय है। फलतः खेती तथा उससे सम्बन्धित कार्यों में उनका अधिकांश समय व्यतीत होता है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि उनकी धार्मिक गतिविधियॉ कृषि प्रधान हों। उनकी कुछ धार्मिक कियायें केवल उनकी खेती की सुरक्षा तथा उसे अधिकतम सम्भव उपज लेने के ध्येय से होती है जो निम्नवत हैः–

1. किसी फसल की बढ़िया उपज बोये गये बीज के भली–भान्ति अंकुरित हो जाने पर निर्भर करती है। यदि बीज में अंकुरण सही नहीं आता तो थारू परेशान हो जाता है। उसको यह देवी कोप मान कर अपने बस के बाहर समझ लेता है। इसके समाधान के लिए व अपने "भरारा" के पास पहुंच जाता है, उसकी मान्यता है कि 'भरारा' के मंत्रों में वह ताकत है कि बीज का अंकुरण शीध्र हो जाये। ' भरारा' अपने यजमान के खेत के दो एक चक्कर लगाता है। इसके साथ व मंत्रोच्चार करता हुआ जल छिड़कता जाता है "बीजाकुंरण" की इस धार्मिक किया को "बहुरारा "कहा जाता है।

2. बोये गये बीज का अंकुरण ही पर्याप्त नहीं होता है, फसल की कीट–व्याधियों से रक्षा भी जरूरी है, इसके लिए थारूओं को अपने भरारा की जादुई शक्तियों का भरोसा रहता है। भरारा उनके गांव में आकर दूध को मन्त्रोच्चारण के साथ अभिसिंचित करता है। तदोपरान्त इस दूध को गांव के प्रधान अथवा मुखिया के घर पर रख लिया जाता है। कुछ समय बाद इस दूध को गांव में सभी परिवारों को वितरित किया जाता है। इस वितरित दूध को थारू अपने खेत के तीन छोरों में छिड़कते हैं। चौथे छोर पर यह दूध नहीं छिड़का जाता। थारूओं का विश्वास है कि इस प्रकार दूध का छिड़काव करने से खेत में मौजूद कीड़े–मकौड़े वहां से भाग खड़े होते हैं और चौथा छोर ही उनके बाहर निकलने का रास्ता है।

3.थारूओं का ख्याल है कि खेत पर धी व खांण की धूप चारों ओर फैला देने से कीड़े मकोड़े फसल को नुकसान नहीं पहुंचाते हैं उनका विचार है कि इस प्रकार धूप का धुआँ दिये जाने से दैवी कृपा उन्हें प्राप्त होती है, जिससे उनकी फसल की रक्षा हो जाती है।

4.जंगली जानवरों से फसल को बचाने के लिए थारू खेतों में मचान बना लेते हैं इससे जंगली जानकर उनके खेतों के समीप नहीं आते हैं। लेकिन यदि गांव जंगल की बारी सीमा पर स्थित हो तो यह तरकीब भी काम नहीं आती जब जंगली जानवरों की इतनी बहुतायत होती है तो मचान से भी नही होता हे। ऐसी हालत में थारू फिर अपने भरारा की मदद लेता है। भरारा मंत्रों के द्वारा जल को अभिसिचिंत करता है और उसे जल को

अपने यजमान के खेतों के चारों कोनों पर छिड़क देता है। थारू मानते हैं कि फिर जंगली जानवर उनके खेत में प्रवेश नहीं कर सकते हैं।

5. पकी फसल को काटने का कार्य भी समारोह पूर्वक किया जाता है। थारू इसको नया उत्सव कहते हैं। फसल पकने के लिए तैयार होने पर किसी सोमवार या वृहस्पतिवारको यह उत्सव मनायाजाता है। पकती हुई फसल के थोड़े पौधे उनकी बालियों सहित उखाड़ कर गृह देवता को चढ़ाये जाते हैं। पूजा के उपरान्त गिलियों को पौधे से अलग कर दिया जाता है। उनके दारों को लेकर पकवान बनाये जाते हैं। इन पकवानों को भी सर्वप्रथम देवताओं को चढ़ाया जाता है, फिर पूजा के बाद उन पकवानों को ही प्रसाद मानकर परिवार में तथा मेहमानों के बीच वितरित करके खा लिया जाता है। इस तरह थारू जनजाति फसल की कटाई और उसके उपभोग के अवसर पर भी अपने देवी–देवताओं को याद करती हैं और उनकी पूजा केउपरान्त ही कार्य आरम्भ करतीहैं । यह भी उनकी धार्मिक आस्था का द्योतक है।

वर्तमान समय में थारू समाज में शिक्षा के प्रचार–प्रसाद एवं ज्ञान विज्ञान के विकास से कृषि सम्बंधी रूढ़ियां जो प्रारम्भ में इस थारू जनजाति समाज में प्रचलित थीं अब समय परिवर्तन के साथ–साथ कालातीत हो गयी हैं। इनमें से मात्र फसल के पकने के समय होने वाला उत्सव जो कि भारत वर्ष के सभी भागों में प्रचलित है,इस थारू जनजातीय समाज में भी परम्परा के रूप में अभी भी अपना रखा है।

अन्ध विश्वासः– जादू अलौकिक शक्ति को अपने वश में करने तथा अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्रयोग किया जाता है। जादू उस शक्ति विशेष का नाम है जिसमें "अतिमानवीय" पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सके तथा उसकी कियाओं को अपनी इच्छानुसार भले या बुरे, शुभ–अशुभ उपभोग में लाया जा सके। जादू इस आधार पर एक आभासी विज्ञान भी माना जा सकता है कि कार्यकरण सम्बंध के एक अटल नियम के अनुसार यह प्रकृति पर दबाव डालता है।

आदिम जातियों में जादू की बहुत उपयोगिता परिदृष्य होती है। इन जनजातियों के जीवन में कभी–कभी ऐसी परिस्थितियॉ आ जाती हैं जिसे वे अपने विवेक या बुद्वि से हल नहीं कर सकते। ऐसी परिस्थितियों में

जादू उनकी सहायता अथवा उनके प्रश्नों का उत्तर देकर सन्तुष्ट करता है। वह उनका आत्मविश्वास दिलाकर किसी भी परिस्थिति से उभरने में मदद करता है। थारू जनजाति में अनेक प्रकार के अन्ध विश्वास, जादू–टोने तथा तत्सम्बंधित अपुष्ठानों का विशेष महत्व है इनमें प्राकृतिक विपदाओं जैसे :– बाढ़, अकाल महामारी, रोगों के उपचार के प्रति सामान्यतः उनकी धारणा है कि झाड़–फूंक करने से वह ठीक हो जाता है।

थारू जनजाति भूत–प्रेत, जादू–टोने में विश्वास करते हैं अतः कोई भी कार्य बिगड़ने, रोग से लड़ने, दुघर्टना होने का कारण भूत–प्रेत की अप्रसन्नता मानते हैं।
प्रेतात्माओं को खुश करने के लिए मुर्गा, बकरा, वस्त्रादि निश्चित एकान्त स्थल में रखे जाते हैं और यह विश्वास किया जाता है कि प्रेतात्मायें उसे ग्रहण करने वहां जाती हैं । कार्तिक पूर्णमासी को थारू लोग गंगा स्नान के लिए अपने पूरे परिवार के साथ ब्राहमण को भी साथ ले जाते हैं, और रात्रि में गंगा के घाट में कथा इस कामना से की जाती है कि सभी परिवारजन सुखी व स्वस्थ रहें।

थारूओं में बलि प्रथा भी प्रचलित है। ये लोग अपने देवी– देवताओं को नारियल, बकरा, मुर्गा, शराब, सुअर चढ़ाते हैं। सुअर ज्यादातर 'बुढ़े बाबा' को चढ़ाया जाता है।

निष्कर्ष–

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आवश्यकता अब थारू जनजाति के लोगों को एक नितान्त नया वातारण प्रदान करने की है, जिसमें वे महसूस करेगें कि ,वे भारतीय समाज के भरपूर सदस्य तथा राष्ट् के पूर्ण नागरिक हैं और शासन उनके हितों की पूर्ण सुरक्षा ही प्रदान नहीं करता अपितु उनकी चहुमुखी प्रगति के लिए प्रयासरत भी है। इसी से वे राष्ट् की मुख्य धारा में आकर राष्ट् के उत्थान में योगदान कर सकते हैं। समय की मांग है कि उनके साथ अभी तक जैसा बर्ताव हो रहा है, उससे नितान्त भिन्न व्यवहार उनसे किया जाये तथा उनके समुचित विकास हेतु राष्ट् की सुलभ सभी सुविधायें उन्हें प्रदान की जायें। साथ ही थारू समाज में व्याप्त विभिन्न समाजिक कुरीतियों, कुप्रथाओं जैसे परम्परावादी समाज होने के नाते, जन्म, विवाह तथा विभिन्न उत्सवों मेलो पर दिल खोल कर खर्चा करने की प्रवृति तथा नसे की प्रवृति को दूर करने के लिए सामाजिक संगटनों को इस दिशा में प्रयास करना चाहिए। वैसे विभिन्न सामाजिक संगठन इसी दिशा में कार्य कर रहे हैं।
जहां तक प्रचीन थारू सांस्कृतिक परम्पराओं का प्रयास है वर्तमान में युवा युवतियों आधुनिकता में अभ्यस्त हैं कि अपनी सांस्कृतिक धरोहर की ओर मोहभंग सा हो गया है। मुम्बइयां स्टाईल, गीत,नृत्य और अपने आपको ढालने में अधिक ध्यान दे रहे हैं। ऐसी स्थिति में इस जनजाति की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर विलुप्त हो जायेगी। इसके लिए आवश्यक है कि संस्थागत स्तर पर युवक–युवतियों को सांस्कृतिक धरोहर प्रशिक्षण देकर प्रत्येक गांव में कार्यक्रम प्रस्तुत किये जायें । साथ ही साथ इस समाज में व्याप्त बुराईयों,कुरीतियों के संदर्भ में भी बताया जाय। इस प्रकार इस जनजाति के युवक–युवतियां अपनी प्राचीन संस्कृति से रूबरू होंगे, उसे ग्रहण करने का प्रयास करेगें।

थारु जनजाति की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत एवं सांस्कृतिक पराम्पराओं के संरक्षण एवं संवधर्न हेतु प्रस्तावः

संदर्भः सांस्कृतिक विरासत तथा भारत की विभिन्न सांस्कृतिक पराम्पराओं के संवर्धन के अन्तर्गत उपरोक्त प्रस्ताव संगीत नाटक अकादेमी(Sangeet Natak Academy) दिल्ली को भेजा गया था, जो स्वीकृत हो कर आ गया है। इस अध्ययन(परियोजना)की रुपरेखा निम्न प्रकार से दी जा रही है। इस अध्ययन (परियोजना) को भीध्र पूर्ण कर लिए जाने का संकल्प तो था ही लेकिन ' अकादेमी' से स्वीकृति मिलने में देर होने के कारण इसको पूरा करने में भी देर हो सकती है। अतः (परियोजना) के संदर्भ में 'अकेदमी' द्वारा चाही निम्नलिखित बिन्दुओं पर जानकारियों को संकलित कर भेजा जा रहा हैं ।

1. **परियोजना का संक्षिप्त विवरणः–**

'सारस' ि ावालिक हयूमन एग्रीकलचर रिसर्च एंड इन्वायरनमैंट सोसाईटी, खटीमा (Shivalik Human Agriculture Research and Environment Society, Khatima) एक पंजीकृत स्वयं–सेवी संस्था है जो सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का संपादन करती है।संस्था का मुख्य उददे य सांस्कृतिक कार्यक्रमों को बढ़ावा देना तथा लुप्त हो रही जनजातीय संस्कृति को उजागर करना व क्षेत्रीय सांस्कृतिक कार्यक्रमों का प्रचार–प्रसार सहित महत्वपूर्ण सांस्कृतिक मामलों पर अनुसंधान प्रोत्साहन विशयक सर्वेक्षण, सेमिनार, भाोधकार्य कर संस्कृति का विकास करना है तथा थारु जनजाति की लोक कला, संस्कृति को उजागर करना है। संस्था द्वारा समय–समय पर मनाये जाने वाले महोत्सवों, पर्वों जैसे भारदोत्सव, बाराही मेले, होली मिलन समारोह, राज्य स्थापना दिवस के अवसर पर संस्था के कलाकारों द्वारा थारु जनजाति की लोक संस्कृति एवं लोक नृत्य, विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से प्रस्तृत किये जाते रहे हैं। इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्दे य लुप्त होती इस जनजाति की संस्कृति को सुरक्षित ही नहीं करना है बल्कि और मजबूत करना है। (संगीत नाटक अकेदमी, नई दिल्ली) द्वारा संस्था को क्षेत्र में थारु जनजाति की सांस्कृतिक विरासत जो धीरे धीरे लुप्त होती जा रही है का संरक्षण करने के उपायेां के सम्बंध में अध्ययन करने के लिए एक परियोजना प्रस्ताव स्वीकृत किया गया है जिसके दो मुख्य उद्दे य हैं :–

1. क्षेत्र में थारु जन–जाति जिसका मुख्य केन्द्रीकरण उत्तराखंड के जिला उधमसिहं नगर की तहसील खटीमा में है, और जिसकी पुरातन लोक संस्कृति धरोहर धीरे धीरे लुप्त होने के कगार पर पहुच चुकी है, के कारणों का अध्ययन एवं वि ालेशण करना ।
2. इस लुप्त होती प्रचीन विरासत का दस्तावेजीकरण कर, ऐसे उपाये सुझाये जाये, जिस से इस संस्कृति को बचाया ही नही जाएं , बल्कि इसका और मजबूती से विकास हो सके।

परियोजना का कार्य रुपान्तरण एवं क्रियान्वयनः–

उत्तराखंड राज्य का जनपद उधमसिहं नगर की तहसील खटीमा थारु जनजाति बाहुल्य क्षेत्र माना जाता है।थारु जनजाति की सबसे अधिक आबादी इसी क्षेत्र में है। अपने कार्य अनुभवों के आधार पर जिन गावों में जहां जनजाति लोक संस्कृति की जड़ें गहरी रही हैं ,का दस्तावेजीकरण तथा क्रियान्वयन के लिए चुनाव किया जायेगा तथा गांव की सूची तैयार की जायेगी। यहां के पुराने जानकार बुजुर्गों के साथ सम्पर्क साधा जायेगा और लुप्त होती संस्कृति का फिर से दस्तावेजीकरण किया जायेगा। साथ ही पुराने कलाकारों जो मेले, उत्सवों और त्याहारों में अपनी संस्कृति का प्रद ान करते रहते हैं को ढूंढा जायेगा । संस्था की इस संस्कृति के विकास हेतु कलाकारों की एक टोली पहले से ही है तथा इस टोली के साथ नये कलाकारों को भी जोड़ा जायेगा और आपस में ज्ञान का अदान–प्रदान कर अर्जित अनुभवों के आधार पर एक नयी सीख का सृजन किया जायेगा। साथ ही पड़ोस के नेपाल दे ा में भी थारु जनजाति के लोग अधिक संख्या में हैं इन कलाकारों को यहां रह रहे कलाकारों के साथ भी जोड़ा जायेगा। इससे नये अनुभवों से सीख कर एक नयी प्र ाक्षित टीम का निर्माण हो सकेगा जो लुप्त होती संस्कृति के विकास के लिए और सक्षम तरीके से कार्य कर सकेगी।

परियोजना का समय चक्रः–

यू ंतो इस परियोजना को बहुत पहले पूरा हो जाना चाहिए था लेकिन एकेडमी से इसे स्वीकृति मिलने में देरी से इसको पूरा करने में भी अनाव यक देरी हो रही है। अतः जिसे मार्च 2016 तक पूरा हो जाना चाहिए था, अब तीन माह का समय इसे पूरा करने के लिए और चाहिए अतः मई माह के अन्त तक इसे हर हाल में पूरा कर तैयार रिपोर्ट, दस्तावेजों, कार्यक्षेत्र के चित्रों के साथ एकेडमी में प्रस्तुत कर दिया जायेगा।

परियोजना का वि ोश क्षेत्र

परियोजना के कियान्वयन हेतु जनपद उधमसिहं नगर ,तहसील खटीमा के निम्न गांवों को चुना गया है। इसका मुख्य कारण यहां की थारु जनजाति के साथ संस्था

क्र0सं0	गांव का नाम	तहसील	जनपद
1.	चारुबेटा	खटीमा	उधमसिहं नगर
2.	मुडेली	खटीमा	उधमसिहं नगर
3.	अमांउ	खटीमा	उधमसिहं नगर
4.	तिगरी	खटीमा	उधमसिहं नगर
5.	गोसीकुआं	खटीमा	उधमसिहं नगर
6.	भुड़ाई	खटीमा	उधमसिहं नगर
7.	विगराबाग	खटीमा	उधमसिहं नगर
8.	कुटरा	खटीमा	उधमसिहं नगर
9.	छिनकी	खटीमा	उधमसिहं नगर
10.	नौगवांठाग्गू	खटीमा	उधमसिहं नगर
11.	उदून	खटीमा	उधमसिहं नगर

का एक गहन रि ता स्थापित हो चुका है, साथ ही जनजाति की अधिकां ा आबादी भी इन्ही गांवों में बसी है। ऐसे 15 गांवो की सूची निम्न प्रकार से दी जा रही है तथा इन्हीं गांव से संदर्भ और सम्पर्कों की सूची भी तैयार कर ली गयी हैः–

12.	बनकटिया	खटीमा	उधमसिहं नगर
13.	भूड़ाकिसनी	खटीमा	उधमसिहं नगर
14.	वनभूड़िया	खटीमा	उधमसिहं नगर
15.	श्रीपुरविचवां	खटीमा	उधमसिहं नगर

संदर्भ पहलू: जिसे परियोजना में सम्मिलत किया जायेगाः–

क्षेत्र का सर्वेक्षण करते समय कुछ दस्तावेजीकरण पहले ही हो चुका है, साथ ही कुछ कलाकारों के साथ कार्यक्रम भी सम्पन्न हो चुके हैं जिनकी एक झलक इन तस्वीरों से मिल सकती है। साथ ही सर्वेक्षण के दौरान कुछ अध्ययन सामग्री तथा इन लोक कलाओं के सम्बंध में जो दस्तावेज एकत्रित किए गये हैं उसकी सूची भी संलग्न की जा रही है। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के चित्र तथा अन्य दस्तावेजों की सूची अलग से डाक द्वारा भेजी जा रही है।

सारां ा तथा दृश्टिकोणः–

जनजाति के प्रबुद्व एवं जनप्रतिनिधियों से गहन विचार–विम र्ा के बाद एक पूर्ण दस्तावेज तैयार हो जायेगा, जिसके आधार पर इस लुप्त होती संस्कृति को उजागर और विकसित करने हेतु कलाकारों एवं कार्यकर्ताओं की एक सक्षम टीम तैयार हो जायेगी। इस टीम को और प्रि ाक्षित कर अन्य उत्तराखंडी संस्कृतियों केसाथ कैसे समन्वय किया जाये, इस टीम का मुख्य कार्य रहेगा।

जैसा कि सर्वविदित है कि उत्तराखंड को देवभूमि कहा गया है अतः यहां की संस्कृति भी देवताओं को प्रसन्न रखने एवं मन्दिरों–देवालयों में उनकी उपासनाओं के इर्द–गिर्द धूमती है। वही स्थिति थारु संस्कृति की भी है जो अपने ईश्ट देवताओं की उपासनाओं के लिए कृतसंकल्प है। इस कार्य हेतु कलाकारों की एक सक्षम टीम तैयार होगी जो अन्य स्थानों पर भी जाकर अपनी संस्कृति को मजबूत करने हेतु प्रचार–प्रसार करेगी। इसी प्रक्रिया में क्षेत्र के अन्य कलाकारों की पहचान भी हो सकेगी। इससे अन्य संसकृतियों में भी थारु संस्कृति को मान्यता और स्वीकारता मिल सकेगी। अतः उत्तराखंडी संस्कृतियों के साथ समजस्य बैठाते हुये, थारु संस्कृति की अलग पहचान कायम रखना भी इस टीम का मुख्य कर्त्तव्य होगा।